ARHAT VACANA

अर्हत् वचन

I.S.S.N. 0971-9024

वर्ष - 11, अंक - 4 अक्टूबर - दिसम्बर 99

Vol.- 11, Issue - 4 October - December 99

भक्तामर स्तोत्र की हस्तलिखित प्रति

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

KUNDAKUNDA JÑĀNAPĪTHA, INDORE

मुखपृष्ठ चित्र परिचय

प्रसिद्ध दिगम्बर जैनाचार्य आचार्य मानतुंग (7 वीं श.ई.) ने प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की भक्ति में अढ़तालीस काव्यों वाले आदिनाथ स्तोत्र की रचना की थी। इस स्तोत्र के प्रथम काव्य में 'भक्तामर' शब्द आने के कारण यह लोक में 'भक्तामर स्तोत्र' के नाम से प्रसिद्ध है।

1916 में सर सेठ हुकमचन्दजी, रायबहादुर सेठ कस्तूरचन्दजी एवं रायबहादुर सेठ कल्याणमलजी ने प्रमुखता से समाज के सहयोग से दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम की स्थापना की थी। इस आश्रम में स्थित जिनालय में शनै: शनै: अमर ग्रन्थालय के अन्तर्गत 942 पांडुलिपियों का दुर्लभ संकलन विकसित हुआ। इसी संग्रह के सूचीकरण की प्रक्रिया में हमें फुटकर पन्नों के मध्य एक पोस्टकार्ड पर श्री प्यारेलालजी परवार, राधोगढ़ द्वारा लिखित 'भक्तामर स्तोत्र' के 48 काव्य प्राप्त हुए। सुन्दर अक्षरों में लिखी यह पांडुलिपि ही मुखपृष्ठ पर अंकित है।

— सम्पादक

I.S.S.N. - 0971 - 9024

अर्हत् वचन
ARHAT VACANA

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर द्वारा मान्यता प्राप्त शोध संस्थान), इन्दौर द्वारा प्रकाशित शोध त्रैमासिकी

Quarterly Research Journal of Kundakunda Jñānapīṭha, INDORE
(Recognised by Devi Ahilya University, Indore)

वर्ष 11, अंक 4 — **अक्टूबर – दिसम्बर 1999**
Volume 11, Issue 4 — **Oct. - Dec. 1999**

मानद् - सम्पादक
डॉ. अनुपम जैन
गणित विभाग
शासकीय स्वशासी होल्कर विज्ञान महाविद्यालय,
इन्दौर - 452 017

HONY. EDITOR
DR. ANUPAM JAIN
Department of Mathematics,
Govt. Autonomous Holkar Science College,
INDORE - 452 017 INDIA

☎ (0731) 464074 (का.) 787790 (नि.), 545421 (ज्ञानपीठ) फैक्स : 0731 - 787790
E.mail : Kundkund@bom4.vsnl.net.in

प्रकाशक
देवकुमार सिंह कासलीवाल
अध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,
584, महात्मा गाँधी मार्ग, तुकोगंज,
इन्दौर 452 001 (म.प्र.)

PUBLISHER
DEOKUMAR SINGH KASLIWAL
President - Kundakunda Jñānapītha
584, M.G. Road, Tukoganj,
INDORE - 452 001 (M.P.) INDIA

☎ (0731) 545744, 545421 (O) 434718, 543075, 539081, 454987 (R)

लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों के लिये वे स्वयं उत्तरदायी हैं। सम्पादक अथवा सम्पादक मण्डल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं हैं। इस पत्रिका से कोई भी आलेख पुनर्मुद्रित करने से पूर्व सम्पादक / प्रकाशक की पूर्व अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है।

सम्पादक मंडल / Editorial Board

प्रो. लक्ष्मी चन्द्र जैन
सेवानिवृत्त प्राध्यापक - गणित एवं प्राचार्य
दीक्षा ज्वेलर्स के ऊपर,
554, सराफा,
जबलपुर - 482 002

Prof. Laxmi Chandra Jain
Retd. Professor - Mathematics & Principal
Upstairs Diksha Jewellers.
554, Sarafa,
Jabalpur - 482 002

प्रो. कैलाश चन्द्र जैन
सेवानिवृत्त प्राध्यापक एवं अध्यक्ष
प्रा. - भा. इ. सं. एवं पुरातत्व विभाग,
विक्रम वि. वि., उज्जैन,
मोहन निवास, देवास रोड,
उज्जैन - 456 006

Prof. Kailash Chandra Jain
Retd. Prof. & Head,
A.I.H.C. & Arch. Dept.,
Vikram University, Ujjain,
Mohan Niwas, Dewas Road,
Ujjain - 456 006

प्रो. राधाचरण गुप्त
सम्पादक - गणित भारती,
आर - 20, रसबहार कालोनी,
लहरगिर्द,
झांसी - 284 003

Prof. Radha Charan Gupta
Editor - Ganita Bhārati,
R - 20, Rasbahar Colony,
Lehargird,
Jhansi - 284 003

प्रो. पारसमल अग्रवाल
प्राध्यापक - रसायन भौतिकी,
ओक्लाहोमा स्टेट वि.वि., अमेरिका
बी - 126, अग्रवाल सदन, प्रतापनगर,
चित्तौड़गढ़ (राज.)

Prof. Parasmal Agrawal
Prof. of Chemical Physics,
Oklohoma State University, CH - U.S.A
B - 126, Agrawal Sadan, Pratap Nagar,
Chittorgarh (Raj.)

डॉ. तकाओ हायाशी
विज्ञान एवं अभियांत्रिकी शोध संस्थान,
दोशीशा विश्वविद्यालय,
क्योटो - 610 - 03 (जापान)

Dr. Takao Hayashi
Science & Tech. Research Inst.,
Doshisha University,
Kyoto - 610 - 03 (Japan)

डॉ. स्नेहरानी जैन
पूर्व प्रवाचक - भेषज विज्ञान,
'छवि', नेहानगर, मकरोनिया,
सागर (म.प्र.)

Dr. Snehrani Jain
Retd. Reader in Pharmacy,
'Chhavi', Nehanagar, Makronia,
Sagar (M.P.)

सम्पादक / Editor

डॉ. अनुपम जैन
सहायक प्राध्यापक - गणित,
शासकीय होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय,
'ज्ञानछाया', डी - 14, सुदामानगर,
इन्दौर - 452 009
फोन : 0731 - 787790

Dr. Anupam Jain
Asst. Prof. - Mathematics,
Govt. Holkar Autonomous Science College
'Gyan Chhaya', D - 14, Sudamanagar,
Indore - 452 009
Ph.: 0731 - 787790

सदस्यता शुल्क / SUBSCRIPTION RATES

	व्यक्तिगत INDIVIDUAL	संस्थागत INSTITUTIONAL	विदेश FOREIGN
वार्षिक / Annual	रु./Rs. 100=00	रु./Rs. 200=00	U.S. $ 25=00
आजीवन / Life Member	रु./Rs. 1000=00	रु./Rs. 1000=00	U.S. $ 250=00

पुराने अंक सजिल्द फाईलों में रु. 400.00/U.S. $ 50.00 प्रति वर्ष की दर से सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं।
सदस्यता शुल्क के चेक / ड्राफ्ट कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के नाम इन्दौर में देय ही प्रेषित करें।

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अनुक्रम / INDEX

सम्पादकीय - सामयिक सन्दर्भ — 5
□ अनुपम जैन

लेख / ARTICLE

किंवदन्तियों के पार से झांकते सत्य — 9
□ सूरजमल बोबरा

गोम्मटसार का नामकरण — 19
□ दिपक जाधव

जैन संस्कृति का मोहन जोदड़ो : पारागढ़ — 25
□ लखनलाल खरे

क्या है प्राचीन उदयगिरि - खंडगिरि गुफाओं का भविष्य — 29
□ गौरव छाबड़ा

शक तथा सातवाहन सम्बन्ध — 33
□ नेमचन्द्र डोणगांवकर

अनेकान्त की दृष्टि और पर्यावरण की सृष्टि — 37
□ उदयचन्द्र जैन

प्रकृति पर्यावरण के सन्दर्भ में आहार का स्वरूप — 41
□ राजेन्द्रकुमार बंसल

जैन धर्म और पर्यावरण — 45
□ मालती जैन

Gośālā Movement in India - A Nonviolent Perspective for the Future — 49
□ Abhaya Prakash Jain

प्रतिक्रिया / COMMENTS

देव निर्मित (वोद्वेथूभे) जैन स्तूप — 61
□ कुन्दनलाल जैन

टिप्पणी / SHORT NOTE

Jaina References not Included in Khajuraho Festival — 65
□ A. P. Jain

केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर में सुरक्षित तीर्थंकर पार्श्वनाथ की धातु प्रतिमा — 66
□ नरेशकुमार पाठक

तीर्थ क्षेत्र, विद्यालय आदि में लगाने योग्य पौधे — 67
□ सुरेश जैन मारोरा

गतिविधियाँ — 69

मत - अभिमत — 85

भगवान महावीर के निर्वाण के उपलक्ष में मनाये जाने वाले दीपों के पर्व

दीपावली

एवं

वर्तमान सहस्राब्दी के अन्तिम वर्ष 2000 के शुभागमन के अवसर पर

नव वर्ष

के उपलक्ष में समस्त माननीय लेखकों, सुधी पाठकों एवं शुभचिन्तकों को

हार्दिक बधाई !

— शुभाकांक्षी —

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ कार्यपरिषद

अध्यक्ष : देवकुमारसिंह कासलीवाल
उपाध्यक्ष : पं. नाथूलाल जैन शास्त्री
सचिव : डॉ. अनुपम जैन
सदस्य : अजितकुमारसिंह कासलीवाल
महाराजाबहादुरसिंह कासलीवाल
राजेन्द्रकुमारसिंह कासलीवाल
राजेन्द्रकुमार सेठी
कैलाशचन्द चौधरी
कैलाशचन्द सेठी
चन्द्रकुमारसिंह कासलीवाल

निदेशक मंडल

अध्यक्ष : प्रो. नवीन सी. जैन, इन्दौर
सचिव : डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर
सदस्य : पं. नाथूलाल जैन शास्त्री, इन्दौर
प्रो. आर. आर. नांदगांवकर, नागपुर
प्रो. ए. ए. अब्बासी, इन्दौर
प्रो. नलिन के. शास्त्री, बोधगया
प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल, मेरठ

अर्हत् वचन, वर्ष - 12, अंक - 1. जनवरी 2000

तीर्थंकर ऋषभदेव विशेषांक

परमपूज्य गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

की प्रेरणा से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मनाये जाने वाले

भगवान ऋषभदेव निर्वाण महामहोत्सव

के उपलक्ष में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की विनम्र प्रस्तुति

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

सामयिक सन्दर्भ

अर्हत् वचन का यह 44 वाँ अंक अपरिहार्य कारणों से किंचित विलम्ब से आपके हाथों में प्रस्तुत है। हमें इस बात का संतोष है कि प्रस्तुत अंक एतदर्थ निर्धारित कालावधि अक्टू.-दिस. 99 के मध्य ही प्रकाशित कर आपके हाथों में पहुँचाया जा सका। सर्वप्रथम तो मैं इस अंक के माध्यम से सम्पादक मंडल के सभी सदस्यों की ओर से आप सभी को दीपावली एवं नववर्ष की शुभकामनाएँ देता हूँ। नये वर्ष में जैन विद्याओं के अध्ययन और अनुसंधान के प्रति हम और आप सब मिलकर कुछ अधिक सार्थक और समन्वित प्रयास कर सकें, यह हम सब की कामना है, क्योंकि संत्रस्त मानवता के कल्याण हेतु एक आशा की किरण जैन जीवन पद्धति में दिखाई देती है। जब साम्यवाद, समाजवाद और पूंजीवाद अपनी प्रासंगिकता खोते जा रहे हैं, तब अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त से समन्वित, संयमित जीवन शैली ही सन्तप्त विश्व को पर्यावरण प्रदूषण, एड्स, शोषण, उत्पीड़न एवं आतंकवाद से मुक्ति दिला सकती है। असीमित भौतिक आकांक्षाएँ ही वर्ग संघर्ष, जाति संघर्ष और क्षेत्रीयता के संघर्ष की जनक हैं। इन आकांक्षाओं के वशीभूत होकर हम अनेकश: सत्य का भी गला घोंट देते हैं। हम यहाँ कतिपय सामयिक बिन्दुओं पर चर्चा कर रहे हैं, हमें विश्वास है कि पाठक इन्हें रुचिकर पायेंगे।

नई सहस्राब्दी का शुभागमन

सम्प्रति यत्र-तत्र-सर्वत्र नई सहस्राब्दी के शुभागमन की तैयारियाँ जोर-शोर से चल रही हैं। अनेक उत्सवों, मेलों का प्रयोजन व्यापारियों एवं उत्पादकों द्वारा किया जा रहा है। कम्प्यूटरों द्वारा अपने उपलब्ध प्रोग्रामों के माध्यम से 99 के बाद 100 को पढ़ने के बजाय शून्य आ जाने से उत्पन्न Y2K समस्या तो वास्तविक थी और हमारे देश के युवा प्रतिभाशाली वैज्ञानिकों ने इसका समाधान भी ढूंढ लिया किन्तु मीडिया जगत पता नहीं किन दबावों में इस सत्य को अनावृत करने में संकोच महसूस कर रहा है कि संख्या का आरम्भ 1 से होता है शून्य (0) से नहीं। वर्तमान में प्रचलित ईसवी केलेन्डर में ईसवी सन् का प्रारम्भ 1 से माना गया है। हमारे देश में शून्य की अभिधारणा 2000 वर्ष से भी अधिक समय पहले विद्यमान थी किन्तु ऋषियों/मुनियों ने संख्या का प्रारम्भ कभी शून्य से नहीं किया। यदि हम 1 जनवरी 2000 से नई शताब्दी स्वीकार करते हैं तो वर्तमान शताब्दी मात्र 99 वर्ष की रह जायेगी और यह सहस्राब्दी 999 वर्ष की रह जायेगी। इसलिये 1 जनवरी 2000 से नई शताब्दी एवं सहस्राब्दी का प्रारम्भ मानना किसी भी दृष्टि से समीचीन नहीं है। प्रसिद्ध खगोलभौतिकीविद् तथा विश्वविख्यात वैज्ञानिक डॉ. जयन्त विष्णु नारलीकर ने टाइम्स ऑफ इण्डिया के 11 नवम्बर 99 के अंक में प्रकाशित अपने आलेख 'The Numbers Game Overcoming the Millenium Mania' में भी यह स्पष्ट अभिमत व्यक्त किया गया है कि नई शताब्दी का प्रारम्भ 1 जनवरी 2001 से ही होगा और 1 जनवरी 2000 से प्रारम्भ होने वाला वर्ष 20 वीं शताब्दी का अंतिम वर्ष होगा। समय की गणना करने वाली दो अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त संस्थाओं U.S. Naval Observatory और Royal Observatory Geenwich ने भी 2001 से ही नई शताब्दी को स्वीकार किया है। आमोद-प्रमोद के कार्यों अथवा व्यापारिक उत्पादनों की बिक्री के संवर्द्धन हेतु विभिन्न माध्यमों को अपनाना और प्रसंगों का उपयोग करना उनका

व्यक्तिगत मामला है किन्तु कालगणना की सुस्थापित परम्पराओं को ध्वस्त कर जन सामान्य को असत्य जानकारी देना, एक अक्षम्य अपराध है। इस सन्दर्भ में दैनिक भास्कर, इन्दौर (5 दिसम्बर 99) में प्रकाशित श्री सतीश मेहता का आलेख 'क्या सहस्राब्दी एक वर्ष बाद बदलेगी ?' भी पठनीय है।

भगवान ऋषभदेव निर्वाण महामहोत्सव

हमनें इन पंक्तियों के लेखनक्रम के प्रारम्भ में जिस जैन पद्धति का उल्लेख किया है उसकी जड़ें कहाँ हैं, यह जानने और समझने की आवश्यकता है। जैन परम्परा के अनुसार जैन धर्म अनादिनिधन एवं प्राकृतिक धर्म है एवं वर्तमान युग के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव हैं। भगवान ऋषभदेव ने ही सर्वप्रथम 'कृषि करो या ऋषि बनो' के रूप में एक जीवन पद्धति दी जिसके अन्तर्गत उन्होंने समाज व्यवस्था, राज व्यवस्था एवं दण्ड व्यवस्था का निर्धारण कर एक सुव्यवस्थित समाज की रचना का पथ प्रशस्त किया। असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प रूप षट् विद्याओं के माध्यम से आपने ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के विकास के लिये सम्यक् आधार विकसित किया। उनके द्वारा बताई गई जीवन पद्धति में आवश्यकताओं को सीमित कर प्रकृति में न्यूनतम हस्तक्षेप करते हुए जीवन जीने की कला निहित है एवं यही मानवता के संरक्षण का उपाय एवं विश्व की ज्वलंत समस्याओं का एकमात्र समाधान है। यह सब कुछ आदिपुराण में विस्तार से विवेचित है। इसके बावजूद हम सबकी उदासीनता तथा कतिपय भ्रांतियों एवं पूर्वाग्रहों के कारण जैन धर्म की प्राचीनता एवं भगवान ऋषभदेव की जनकल्याणकारी शिक्षाओं से विश्व समुदाय अनभिज्ञ रहा। ***परम पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी*** *ने भगवान ऋषभदेव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा जैन धर्म की प्राचीनता से जन-जन को परिचित कराने हेतु भगवान ऋषभदेव निर्वाण महामहोत्सव मनाने की प्रेरणा दी है एवं वर्ष पर्यन्त तक चलने वाले कार्यक्रमों का शुभारम्भ माघ कृष्णा चतुर्दशी, वि.सं. 2056, तदनुसार 4 फरवरी 2000 को दिल्ली के ऐतिहासिक लाल किला मैदान पर सम्पन्न होगा। इस अवसर पर सप्तदिवसीय ऋषभदेव जैन मेला (4 से 10 फरवरी 2000) भी आयोजित है जिसमें आठ भव्य मण्डपों में जैन धर्म, दर्शन, साहित्य, इतिहास, संस्कृति, पुरातत्व के विभिन्न पक्षों को उद्‌घाटित किया जायेगा।*

भगवान महावीर की 2600 वीं जन्म जयन्ती

1974 में राष्ट्रीय स्तर पर ***राष्ट्रसंत आचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज*** *की सार्थक एवं दूरदृष्टिपूर्ण प्रेरणा से मनाये गये भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाण महोत्सव से जैन धर्म का व्यापक प्रचार एवं प्रसार हुआ एवं जैन धर्म की बौद्ध धर्म एवं हिन्दू धर्म से अलग पहचान बनी, लोगों ने यह स्वीकार किया कि महात्मा गांधी ने भारत को स्वतंत्रता दिलाने वाले अहिंसा सिद्धान्त को जैन परम्परा से ही प्राप्त किया है। वर्तमान में ईसवी सन् 2001 में भगवान महावीर की 2600 वीं जयन्ती राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मनाये जाने की चर्चाएँ चल रही हैं। मेरे विचार से भगवान ऋषभदेव निर्वाण महामहोत्सव एवं भगवान महावीर की 2600 वीं जन्मजयन्ती के आयोजन की कल्पना से जुड़े कार्यकर्ताओं को परस्पर समन्वय करके भगवान महावीर की 2600 वीं जन्मजयन्ती के उपलक्ष्य में 'ऋषभदेव-महावीर महामहोत्सव' का आयोजन करना चाहिये। इससे आयोजकों की शक्ति बढ़ेगी एवं जैन धर्म के प्रचार-प्रसार के दोनों आयोजकों के मूल उद्देश्य की पूर्ति अधिक सक्षमता से होगी।*

यू. जी. सी. – नेट परीक्षा

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (U.G.C.) देश में उच्च शिक्षा को नियमित एवं नियंत्रित करने वाली शीर्ष संस्था है। देशभर में फैले विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों में व्याख्याता (लेक्चरर) के पद पर नियुक्ति एवं कनिष्ट शोध अध्येतावृत्तियों के लिये कुछ वर्षों से नेट (NET) परीक्षा का आयोजन (U.G.C.) द्वारा किया जाता है। इस परीक्षा को उत्तीर्ण करने के बाद ही कोई अभ्यार्थी विश्वविद्यालयीन शिक्षा सेवा अथवा आयोग एवं उससे सम्बद्ध संस्थाओं द्वारा प्रवर्तित कनिष्ठ शोध ध्येतावृत्तियों (J.R.F.) हेतु पात्रता प्राप्त करता है। यह दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जायेगा कि (U.G.C.) ने (J.R.F. - NET) परीक्षा के विषयों में से कोड नं. 078 'जैन विद्या और प्राकृत भाषा' को समाप्त कर 'बौद्ध दर्शन एवं गांधी शांति विचार' विषय के कोड क्रमांक 080 में विलीन कर दिया। इस प्रकार कोड क्रमांक 080 'बौद्ध, जैन, गांधीवाद एवं शांति अध्ययन' विषय बन गया। ज्ञातव्य है कि कोड क्रमांक 083 'पाली साहित्य' पूर्व से ही निर्बाध रूप से चल रहा है तथा कोड 080 में बौद्ध दर्शन भी है जबकि प्राकृत भाषा को परिदृश्य से पूर्णतः गायब कर दिया गया। इस सन्दर्भ में प्राकृत भाषा एवं साहित्य के अध्येता छात्रों, प्राध्यापकों एवं प्राकृत अध्ययन-अनुसंधान में रत विभिन्न संस्थाओं की व्यापक प्रतिक्रिया हुई है। जैन विद्या संस्थान, श्रीमहावीरजी-जयपुर के निदेशक डॉ. कमलचन्द सोगाणी, अन्तर्राष्ट्रीय जैन विद्या अध्ययन केन्द्र, गुजरात विद्यापीठ-अहमदाबाद के निदेशक डॉ. शेखरचन्द्र जैन, अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत् परिषद, तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के अध्यक्ष पं. शिवचरनलाल जैन-मैनपुरी, प्रचार मंत्री डॉ. अभयप्रकाश जैन आदि विद्वानों ने व्यक्तिशः एवं अपनी संस्थाओं की ओर से सशक्त विरोध दर्ज कराया है तथा इस सन्दर्भ में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को इन कोडों में किये गये संशोधनों को निरस्त कर पूर्ववत् प्राकृत भाषा एवं जैन विद्या को एक स्वतंत्र कोड के अनतर्गत रखे जाने की मांग की है। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर भी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से यह विनम्र आग्रह करता है कि प्राकृत भाषा की गौरवशाली परम्परा, भारतीय संस्कृति के उन्नयन में प्राकृत भाषाविदों एवं प्राकृत साहित्य के अवदान को दृष्टिगत रखते हुए उसे (NET) परीक्षा में स्वतंत्र कोड के तहत सम्यक् स्थान दिया जाना चाहिये। ऐसा करना आयोग की भारतीय भाषाओं के अध्ययन और अनुसंधान को सम्यक् संरक्षण देने की रीति-नीति के अनुरूप तो होगा ही, देश के विश्वविद्यालयों में जैन विद्या एवं प्राकृत भाषा के विभागों, पाली-प्राकृत भाषा विभागों के छात्रों के प्रति भी न्यायपूर्ण होगा। आज जब सम्पूर्ण देश में संस्कृत के विकास हेतु सघन प्रयासों की श्रृंखला में संस्कृत वर्ष मनाया जा रहा है तब उससे भी प्राचीन भारतीय भाषा, प्राकृत की यह उपेक्षा समझ से परे है। मात्र इतना ही नहीं भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग जैन धर्म के आगमों की भाषा भी प्राकृत ही है। यदि बौद्ध धर्म ग्रन्थों की भाषा पाली को समुचित आदर और सम्मान दिया जा रहा है जिसकी वह पात्र है तो फिर प्राकृत को क्यों नहीं?

जैना (JAINA) का अधिवेशन

'Federation of Jaina Associations in North America' (JAINA) का वार्षिक अधिवेशन 2 से 5 जुलाई 99 के मध्य फिलाडेल्फिया में अनेक कार्यक्रमों के साथ सम्पन्न हुआर। भारत से सम्मिलित होने वालों में अर्हत् वचन सम्पादक मंडल के सदस्य प्रो. पारसमल अग्रवाल का नाम सम्मिलित है। साध्वी चन्दनाजी, श्री मनक मुनिजी, श्री अमरेन्द्र मुनिजी, साध्वी शिल्पाजी के अतिरिक्त पूज्य भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिजी, आचार्य महाप्रज्ञ की शिष्याएँ (श्रमणीजी), श्री ज्योतिन्द्र दोशी, ताराबेन दोशी, डॉ. जगदीशप्रसाद जैन, डॉ. कल्याण गंगवाल, पं. नीरज

जैन आदि सम्मिलित हैं। इस अधिवेशन में मध्यप्रदेश के इन्दौर एवं गुना नगरों से सम्बद्ध

मूलत: चिकित्सक एवं वर्तमान में हीरों के व्यापार से सम्बद्ध डॉ. महेन्द्र पांड्या का आगामी 2 वर्ष हेतु अध्यक्ष पद पर निर्वाचन हम सबके लिये गौरवपूर्ण है। धार्मिक एवं संस्कारवान परिवार से सम्बद्ध डॉ. पांड्या एवं श्रीमती आशा पांड्या की जैन साहित्य एवं पुरातत्व में गहन अभिरूचि है। विदेश में निवास कर रहे जैन बन्धुओं तथा विदेश में ही जन्म लेने वाली नई जैन पीढ़ी में जैन संस्कारों को संरक्षित करना एवं विकसित करना, उनकी प्राथमिकताओं में सम्मिलित हैं। सरल, सुबोध, प्रवाहपूर्ण शैली में अंग्रेजी भाषा में तर्कपूर्ण वैज्ञानिक दृष्टि सम्पन्न जैन साहित्य के सृजन की उनकी कल्पना को मूर्तरूप देने में सभी का सहयोग अपेक्षित है। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ से एक भेंट में डॉ. पांड्या ने सभी से एतदर्थ सहयोग का आग्रह किया है।

अर्हत् वचन ने वर्ष-6, अंक-3 (जुलाई 1994), पर्यावरण विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया था। उस अंक की व्यापक रूप से प्रशंसा हुई थी। हमें यह लिखते हुए गौरव की अनुभूति हो रही है कि उस अंक की शोधकर्ताओं में व्यापक मांग के कारण अब तक छाया प्रतियाँ उपलब्ध करानी पड़ रही हैं। प्रस्तुत अंक में हमनें पुन: पर्यावरण विषयक 3 आलेख क्रमश; डॉ. उदयचन्द जैन-उदयपुर, डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसल-अमलाई एवं डॉ. मालती जैन-मैनपुरी के प्रकाशित किये हैं। श्री सूरजमल बोबरा का आलेख ऐतिहासिक तथ्यों के संकलन की नई दृष्टि देता है एवं गणितज्ञ श्री दिपक जाधव ने बिना किसी पूर्वाग्रह के गोम्मटसार के नामकरण पर दृष्टि डाली है। श्री लखनलाल खरे ने पारागढ़ में धूलधूसरित हो रहे जैन वैभव की जानकारी देकर जैन धर्मावलम्बियों पर उपकार ही किया है। श्री खरे एवं श्री गौरव छाबड़ा ने जो प्रश्न उठाये हैं उन पर दृष्टिपात कर जैन संस्कृति के विस्मृत हो रहे अवशेषों एवं बलात् नष्ट किये जा रहे पूजा स्थलों का संरक्षण मात्र तीर्थ क्षेत्र कमेटी का ही नहीं हम सबका दायित्व है। संतशिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज ने अपने इस इन्दौर चातुर्मास में गौशालाओं की स्थापना की सम्यक् प्रेरणा दी एवं नव स्थापित 'दयोदय चेरिटेबल फाउण्डेशन' के माध्यम से इन्दौर में शीघ्र ही एक बड़ी गौशाला की स्थापना की जायेगी। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के अध्यक्ष माननीय **श्री देवकुमारसिंह जी कासलीवाल** के नेतृत्व में अहिल्या माता गौशाला जीवदया मंडल ट्रस्ट द्वारा अहिल्या माता गौशाला का इन्दौर में आदर्श रूप में संचालन किया जा रहा है। इसी पृष्ठभूमि में डॉ. अभयप्रकाश जैन-ग्वालियर का आलेख पठनीय है। डॉ. सुरेश मारोरा द्वारा संकलित जानकारी निश्चय ही तीर्थों के चतुर्दिक पर्यावरण के विकास में उपयोगी होगी।

पत्रिका का आगामी अंक भगवान ऋषभदेव विशेषांक के रूप में प्रकाशित होगा जिसमें नियमित रूप से प्रकाशित होने वाले आलेखों के अतिरिक्त भगवान ऋषभदेव पर विशेष सामग्री प्रकाशित होगी। माननीय लेखकों से शोधपूर्ण सामग्री 15 जनवरी 99 तक सादर आमंत्रित है।

प्रस्तुत अंक की सामग्री के संशोधन एवं प्रकाशन में सहयोग हेतु मैं सम्पादक मंडल के सभी सदस्यों एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के कार्यालयीन सहयोगियों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

डॉ. अनुपम जैन

14.12.99

वर्ष - 11, अंक - 4, अक्टूबर - 99, 9 - 18

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

किंवदन्तियों के पार से झांकते सत्य

■ सूरजमल बोबरा *

मानव जीवन की अनंत काल से चली आ रही यात्रा का रिकार्ड होना या उसे रखना असंभव कार्य है। किन्तु इस बात से कोई असहमत नहीं हो सकता कि अपने आपको व्यक्त करना मनुष्य की सदैव से इच्छा रही है। इस इच्छा ने मानव जीवन की निरन्तरता के सिद्धान्त को आधार दिया और संभवत: इस इच्छा ने सभ्यता के केनवास में अनमोल रंग भरे। आगम, शास्त्र - पुराण, कविता, कहानी और कला के सभी माध्यम इस इच्छा के परिणाम हैं। इसी ने इतिहास और पुरातत्व के मसाले गढ़े हैं। यद्यपि भूलना मनुष्य का स्वभाव है, फिर भी अभिव्यक्तियों ने चाहे अनचाहे अद्भुत संदर्भ जुटाये हैं। कहीं शैलचित्रों के रूप में, कहीं सूक्तों के रूप में, कहीं शिलालेखों के रूप में, कहीं वास्तु शिल्पों के रूप में और कहीं संगीत, शास्त्र व पुराणों के रूप में मानव जाति ने इस भूल जाने के स्वभाव के पीछे झांकने के अनूठे रास्ते छोड़े हैं।

ऐसा ही एक रास्ता है, स्मरण द्वारा सुनी, पूर्वजों द्वारा बताई और परम्परा से चली आ रही बातों - किंवदन्तियों, अनुष्ठानों व गल्पों का खजाना। यह सभी विधाएँ जन - जन के माध्यम से सतत जीवित रहती हैं। पीढ़ी - दर पीढ़ी इनका संदेश अगली पीढ़ी तक जाता है और सूचना जीवित रहती है। इन विधाओं को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। श्री रामशरण शर्मा[1] का यह कहना है कि मिथकों, अनुष्ठानों के उद्भव और विकास का सम्बन्ध वास्तविकता से है। यहाँ तक कि जंगली पौधों और वनस्पतियों का विकास भी कुछ नियमों द्वारा नियंत्रित होता है। अत: मिथक और अनुष्ठान रिक्तता अथवा बंजर भूमि में उत्पन्न नहीं होते। इनकी उत्पत्ति किन्हीं भौतिक तथा सामाजिक पर्यावरणों के कारण हुई है, जिन्हें ये सहायता प्रदान करते हैं और स्थिर बनाते हैं।' भारत के इतिहास के बारे में तो इसका बहुत ही महत्वपूर्ण हाथ है। आप देखेंगे कि सिंधु जीवन शैली का जो चित्र उभरता है, वही चित्र वैदिक काल (यद्यपि ऋग्वेद में उसके दिशाभेद के संकेत है, किन्तु भारत के पर्यावरण के प्रमुख तत्वों का पूर्ण प्रभाव और उस के कारण जीवन शैली की निरंतरता दिखाई देती है।), महाभारत काल, बुद्ध - महावीर काल, आचार्य जिनसेन के काल का भी उभरता है और यही अनुष्ठान - मिथक - किंवदंतियों आदि को सार्थक अर्थ प्रदान करता है। बहुत प्राचीन काल का (ऋग्वेद के पूर्व का) हमारे पास कोई रिकार्ड नहीं कि ऋषभ के पुत्र भरत के नाम पर ही इस देश का नाम भरतखंड या भारत वर्ष हुआ। बहुत बाद में वेदों ने इसे सूत्रों में रिकार्ड किया और कई शताब्दियों की किंवदंतियों की यात्रा कर भी यह बात भारत के जन - जन के हृदय में आज अंकित है।

मान्यताओं के अनुसार सदियों तक अलिखित ऋग्वेद स्मरण में जीवित रह सका तो स्मरण और परंपरा से कही सुनी बातों में सत्य क्यों जीवित नहीं रह सकता? हो सकता है ऐसी बात में कुछ बढ़ा - चढ़ाकर कह दिया गया हो। कुछ विस्मृत हो गया हो किन्तु मन को छू लेने वाली घटनाएं बातें पूर्णत: कभी जनमानस से दूर नहीं होती। सूचना प्रवाहमान रहती है। किन्तु उसे असत्य नहीं कहा जा सकता। उसका आधार कहीं न कहीं होता है।

हमें यहाँ दो बातों पर अवश्य ध्यान रखना है। पहली तो यह कि इन जन मानस में प्रवाहमान बातों को किसी पूर्वाग्रहजनित उद्देश्य से प्रचारित न किया गया हो। इन बातों को इतिहास और भूगोल की कसौटी पर कसा जाना चाहिए। इसके बाद ही उन्हें स्वीकार

* 9 / 2, स्नेहलतागंज, इन्दौर

किया जाना चाहिए। अधिकतम देखने में आया है कि धार्मिक अंधता और राजनैतिक स्वार्थ ऐसी झूठों को प्रचारित करने में आगे रहते हैं जो मानवीय संवेदनाओं के लिए घातक होते हैं। इतिहास को दूषित करते हैं। दूसरी यह कि जो लिखा है वह सदैव सत्य नहीं होता। आग्रहजनित संदर्भ व उद्देश्य कभी-कभी इतिहास को भटका देते हैं और काल को उसे ढोते रहना पड़ता है। कई लिखित सत्य आज असत्य के दायरे में आये हैं। जैसे नई खोजों से यह स्पष्ट होता जा रहा है कि आर्यों जैसी किसी जात ने भारत पर हमला नहीं किया था। जबकि इतिहास के कई पन्ने इस बात को दोहराते नहीं थकते कि आर्यों के आक्रमण के साथ भारत का इतिहास शुरू होता है। यह एनालिसिस इसलिए बनी कि ऋग्वेद ने ऐसे संकेत दिये जैसे आर्यों ने भारत पर हमला किया जबकि जो संघर्ष था वह पहले से चले आ रहे हैं और यह नवोदित विचारों का संघर्ष था। अब लिखा यह भी झूठ सिद्ध हो चुका है कि वैदिक संस्कृति से पूर्व भारत में कोई संस्कृति नहीं थी। अब सिंधु सभ्यता जैसी सभ्यता के विशाल क्षेत्र में फैले होने की खोजों ने यह स्पष्ट कर दिया कि वैदिक सभ्यता से अधिक सशक्त व उन्नत सभ्यता भारत में निरन्तर रूप से प्रवाहित थी। बल्कि यों कहना चाहिए कि वैदिक चिंतन ने धीरे-धीरे अपने में पल रही कमियों को दूर करने के लिए पूर्व में विकसित सभ्यता से कई पाठ सीखे और संस्कृति को नये आयाम मिले। अच्छे और बुरे का निर्धारण करना हमारा काम नहीं है। मेग्नीफाइंग ग्लास लगाकर सत्य को देखने का प्रयास भर हम कर सकते हैं।

विश्व स्तर पर इतिहासकारों ने लिखा कि महावीर से जैन धर्म प्रारंभ हुआ पर अब यह असत्य सिद्ध हो चुका है। महावीर काल में पार्श्वनाथ पूजे जाते थे जो उनसे 250 वर्ष पूर्व हुए और नेमिनाथ आत्मज्ञान के वाहक थे जो कृष्ण और पांडव के समकालीन थे। दिल्ली के लाल किले और आगरा के ताजमहल पर लिखा इतिहास कि यह दोनों मुसलमान शासकों की देन है बिलकुल असत्य है। इन्हें पूर्ववर्ती हिन्दू राजाओं ने बनाया था[2] जिसे मुसलमान शासकों ने बलात कब्जा कर उस शिल्प को परिवर्तित कर दिया। अब यह सत्य उजागर हो रहे हैं। इतिहासकारों से यह त्रुटि प्राप्त संदर्भों के कारण हुई जो आग्रहजनित थे। मुसलमान इतिहासकारों ने अपने बादशाहों को खुश करने के लिए ऐसी बातें लिख दी जो थी ही नहीं। जो मनगढंत और वास्तविकता से परे थीं। इन संदर्भों के आधार पर अंग्रेज-इतिहासकारों और भारतीय इतिहासकारों ने जब बीसवीं सदी में भारत का इतिहास लिखा तो वह भी सत्य से परे हो गया है। यहाँ तक कि प्राचीन अवशेषों के आगे नाम पट्टिका और विवरण लिखने में भी भारी भूल हुई। इन सब ने मिलकर जनमानस में ऐसी अवधारणा पैदा कर दी मानो भारत रीढ़विहीन लोगों का देश था जब कि इतिहास की परतों में घुसा जाय तो स्पष्ट होता है कि देश में सांस्कृतिक-औद्योगिक एवम् वैज्ञानिक शक्ति से भरपूर एक निरन्तर प्रवाहमान परंपरा थी।

जागृत चिंतकों का तो यह देश खान है। श्रमण, वैदिक, ब्राम्हण, बौद्ध और कई उपशाखाओं के रूप में प्रचलित विचारों के उद्गम और विस्तार पर विचार करें तो इस देश पर बाह्य आक्रमणों के अलावा इन विचारों के आपसी संघर्ष ने बहुत प्रभाव डाला है। इन्होंने कई बार आक्रामक रुख भी अपनाया और कई बार अपनी ही जड़ों को काटा, इस का लाभ विदेशी हमलावरों को मिला। अब इसका परिणाम देखिये। हिन्दू, जैन, मुसलमान, क्रिश्चियन, सिख-पारसी सब अपनी आइडेंटीटी इस देश में तलाश कर रहे हैं एक दूसरे की आइडेंटीटी समाप्त कर, जो कि स्वप्न में भी संभव नहीं है। ऐसे भारत के इतिहास को पहचानने के लिए हम ऐसा भी नहीं कर सकते कि इस लिखे को पूर्णतः नकार दें किन्तु हम इस पर प्रश्न चिन्ह लगाकर, इस का सम्यक विश्लेषण कर, जहाँ से भी जो

सत्य प्राप्त हों उसको स्वीकार करें।

इन लिखित असत्यों को बार-बार खोजपूर्ण कहकर, पढ़ाकर इतिहास मनवाने का प्रयत्न जिस प्रकार संदिग्ध है उससे परंपरा से चली आ रही जहन में जमी हुई - अनुष्ठानों में छिपी हुई बातों को कसौटी पर कसना कई गुना उचित व इतिहास की परतों को खोलने में अधिक सहायक है। इतिहास कोई शर्मीली लता नहीं जो मान्यताओं, परंपराओं और अनुष्ठानों की उंगली देखते ही मुरझा जाय।

जैन समूह में बहुत प्राचीन समय से यह मान्यता चली आ रही है कि **'तक्षशिला में छः माह तक बौद्धों ने जैन आगमों की होली जलाई।'** 60 वर्ष पूर्व ठेठ गांव पर जैन बहुल क्षेत्र में अपने दादा से यह बात सुनी थी। अभी भी पुराने पीढ़ी के लोग इस संदेश के वाहक के रूप में मिल जायेंगे। कुछ दिनों पूर्व पुनः एक बुजुर्ग से इसी बात को सुना और मन हुआ कि इस जैन जन मानस में बैठी बात पर विचार खोज की जाय। जो सामग्री प्राप्त हुई इसे आपसे बाँट रहा हूं। यह किसी बौद्ध विद्वेष से प्रेरित नहीं है। अहिंसा के संदेश को विश्व में फैलाने में महात्मा बुद्ध ने जो योगदान दिया वह अविस्मरणीय है। महावीर ने अहिंसा के संदेश को गहराई दी और बुद्ध ने विस्तार दिया। विस्तार ने कालांतर में मूल चिंतन को कई ऐसी धाराओं में मोड़ दिया कि वह आक्रमक हो गया।

ईसा पूर्व की तीसरी शताब्दी से लेकर ईसा पश्चात् की कुछ शताब्दियों में बौद्ध संघ ने जो जैन विरोधी रूख अपनाया उसे कौन नहीं जानता। अकलंक निकलंक की कथा जिस किसी ने पढ़ी है वह इस बात को अच्छी तरह जानता है कि बौद्ध समूह हर हालात में जैन चिंतन को नष्ट करना चाहता था। वैदिक समाज तो ऋग्वेद के माध्यम से पहले ही करीब 4000-5000 वर्ष पूर्व से ही इस कार्य में लगा था किन्तु श्रमण चिंतन से उपजे बौद्ध चिंतन ने भी इस पर हमला किया। बौद्ध समूह हर हालत में जैन चिंतन को नष्ट करना चाहता था क्योंकि भगवान बुद्ध इस चिंतन से बहुत अधिक प्रभावित थे। उनकी समस्त अवधारणाओं पर जैन चिंतन आत्मज्ञान बौद्ध संघ के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती थी। भगवान बुद्ध के अवसान के बाद बौद्ध धर्म के मूल रूप से स्खलित होने के परिणाम स्वरूप, बौद्ध संघ को ऐसा लगने लगा कि उनकी मान्यताओं को कसौटी पर कसने वाले जैन आगमों को नष्ट कर देना आवश्यक है। और उन्होंने ऐसा किया। उन्हें मालूम था कि तक्षशिला में जैन आगमों का भंडार है और एक अमूल्य मानवीय धरोहर, धर्म की धारणाएं, धर्म का शिकार हो गईं। अपार जैन विद्याओं का संग्रह अग्नि की भेंट चढ़ा दिया गया। कल्पना कीजिए छः माह तक होली जलती रहे तो क्या नहीं जला होगा? आगम (कपड़े-सेलखड़ी-लकड़ी-पत्तों पर अंकित), शिल्प (लकड़ी-ताम्बें और अन्य माध्यमों द्वारा निर्मित) सभी जलकर खाक हो गये होंगे। इससे इतना बड़ा शून्य पैदा हो गया कि जैन समाज में यह धारणा बल पकड़ गई कि अभिव्यक्त आगम सुरक्षित नहीं अतः उन्हें मस्तिष्क में रखना सुरक्षित समझा जाने लगा। श्रुत केवली और केवली इसी प्रकार के ऋषि थे जिन्होंने अपने मस्तिष्क में उन्हें सुरक्षित रखा।

तक्षशिला के बारे में यूनानी तथा भारतीय संदर्भों में कई जगह सूचनाएं मौजूद हैं। इससे हटकर कुछ थोड़ा विचार कर लें तो ठीक रहेगा। तक्षशिला को अन्य किस रूप में पहचाना गया है इसे भी देख लें।

1. ऋषभदेव के छोटे पुत्र बाहुबली की राजधानी तक्षशिला थी। यह सोच पुरषोत्तम जैन ने व्यक्त किया है।[3]
2. सिंधु सभ्यता का विघटन राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार ईसा से 2750 वर्ष पूर्व के

आस-पास हुआ।[4] इस विघटन के परिणाम स्वरूप सिंधु क्षेत्र के वासियों का प्रत्यावर्तन सारे देश में हुआ। यहां के वासी अपनी कृतियों, अपनी विद्याओं के साथ प्रत्यावर्तित हुए। इस प्रत्यावर्तन को अब अच्छी तरह पहचाना जाने लगा है। यह भी अब विश्वास के साथ पहचाने जाने लगा है कि समस्त सिंधु सभ्यता के क्षेत्र में श्रमण (जैन) चिंतन और विद्याओं का अस्तित्व था। विस्थापित सिंधु सभ्यता के वासी तक्षशिला भी पहुंचे जहाँ संभवत: पहले से ही जैन धर्मावलंबी रह रहे थे। सिन्धु क्षेत्र के निकट ही उत्तर में तक्षशिला अवस्थित है। साथ में दिये मानचित्र (अगले पृष्ठ पर) को देखें तो स्पष्ट रूप से दिखाई देगा कि सिंधु सभ्यता के केन्द्रों से जुड़ा हुआ तक्षशिला था। तक्षशिला ने इस काल में बहुत बड़े श्रमण समूह को अपने आंगन में पाया होगा। इन सब लोगों ने मिलकर अपनी विद्याओं को सुरक्षित रखने के लिए स्तूपों का निर्माण कराया और तक्षशिला को जैन विद्याओं का केन्द्र बना दिया। संलग्न मानचित्र में महाभारत काल में श्री राधाकुमुद मुकर्जी ने तक्षशिला को पहचाना है।[5] यदि ऋग्वेद काल में तक्षशिला का अस्तित्व था तो राधाकुमुद मुखर्जी ने अपने वैदिक भारत के नक्शे में इसे क्यों नहीं दिखाया? यह इसलिए है कि वेदों में तक्षशिला का वर्णन नहीं है। हो सकता है कि वैदिक जनों का वहां वास न हो और चूंकि वह क्षेत्र अन्य विद्याओं का केन्द्र था इसलिए इसे जानबूझकर वेदों में स्थान न दिया हो। ऋग्वेद के अध्ययन से स्पष्ट है कि ऋग्वेद में सीमित स्थानों का ही विवरण है। अत: तक्षशिला का वर्णन न हो तो कोई अनूठी बात नहीं है। जो पसंद नहीं उसे नहीं लिखना यह प्रवृत्ति भारत के इतिहास के बारे में नई नहीं है। सम्राट चंद्रगुप्त और चाणक्य के संदर्भों को 10 शताब्दी तक जैन होने के कारण आंखों से ओझल रखा गया है। स्वयं जैन संदर्भो में बुद्ध का कहीं वर्णन नहीं होना इसी प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है। महाभारत काल ईसा से करीब 1000 वर्ष पूर्व माना जाता है। इस समय तक्षशिला का अस्तित्व था यह पूर्णत: मान्य है।

3. तक्षशिला एक प्राचीनतम नगर है। Webster Encyclopedic Unabarised[6] डिक्शनरी में लिखा है तक्षशिला रावलपिंडी पश्चिमी पाकिस्तान के निकट वास्तुशिल्पीय स्थान है, इसी स्थान पर निरंतर तीन शहरों के भग्नावशेष है, जिसका समय ईसा की 7 वीं सदी पूर्व से ईसा पश्चात 7 वीं सदी तक जाता है। यह बुद्ध समुदाय का केन्द्र है। डिक्शनरी (पृ. 1437) में ऐसा वर्णन करना एक अंतर्राष्ट्रीय भूल है। इसे सुधारा जाना चाहिए क्योंकि तक्षशिला का एक सांस्कृतिक समृद्ध स्थान के रूप में महाभारत काल में अस्तित्व था।
4. लगभग 600 ई.पू. भी तक्षशिला एक महत्वपूर्ण प्राचीन राजनैतिक व सांस्कृतिक नगर था। यह नगर एक सांस्कृतिक परंपरा का परिणाम था। 600 से 321 ई.पू. की राजनैतिक व सामाजिक परिस्थितियों व वैचारिक अवधारणाओं के विकास के बारे में रोमिला थापर ने लिखा है वैदिक कट्टरता के विरूद्ध जिन्होंने प्रजातांत्रिक प्रतिक्रिया की चली आ रही परंपरा को अक्षुण्ण रखा था। उन में शाक्य, कोलीय या मल्लों, वज्जियों और यादवों को पहचाना गया है। यह सभी वंश जैन महापुरूषों से जुड़े हैं। 'प्रजातंत्र पर मिले विवरणों को देखने से प्रतीत होता है कि उनके जीवन में नगरों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हमें वैशाली के एक ऐसे नवयुवक का विवरण मिलता है, जो प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए लंबी और कठिन यात्रा करके तक्षशिला गया था और अपने घर लौटकर इसने दस्तकारी शुरू की थी' अर्थात् तक्षशिला इसके पूर्व भी विद्याओं का केन्द्र था। तक्षशिला और वैशाली के घनिष्ठ संबंध थे। यह संदर्भ स्पष्ट रूप से कह रहा है

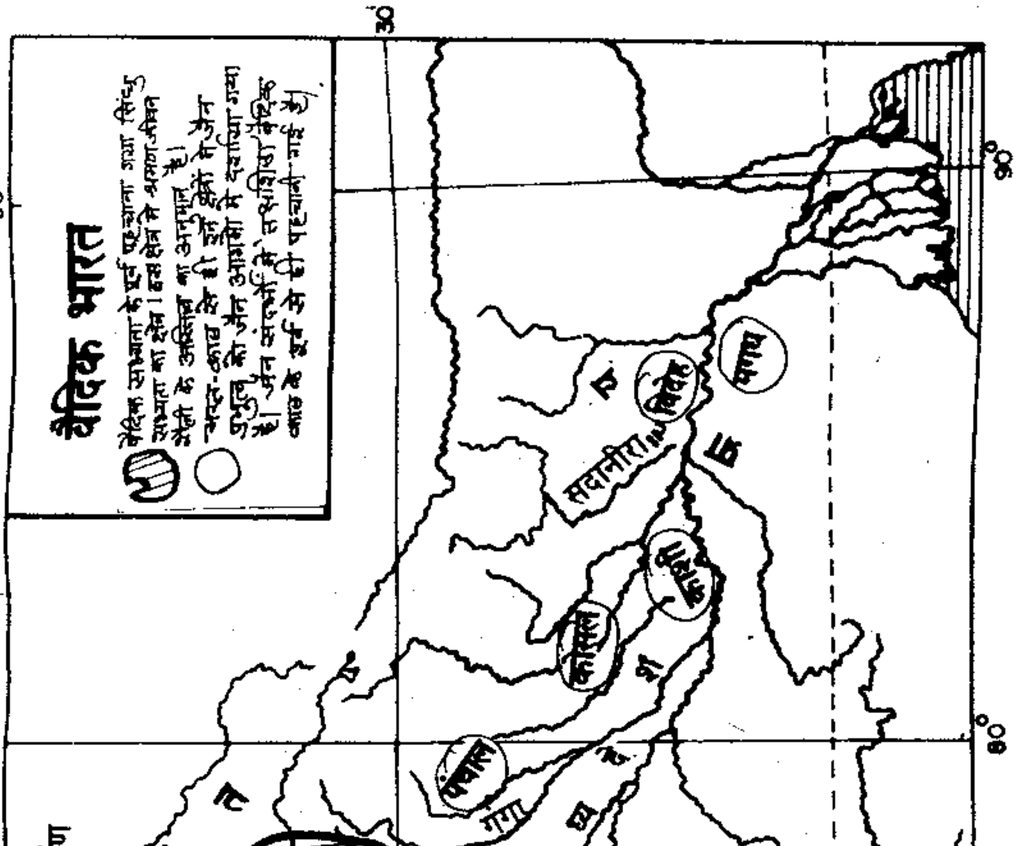
वैदिक भारत

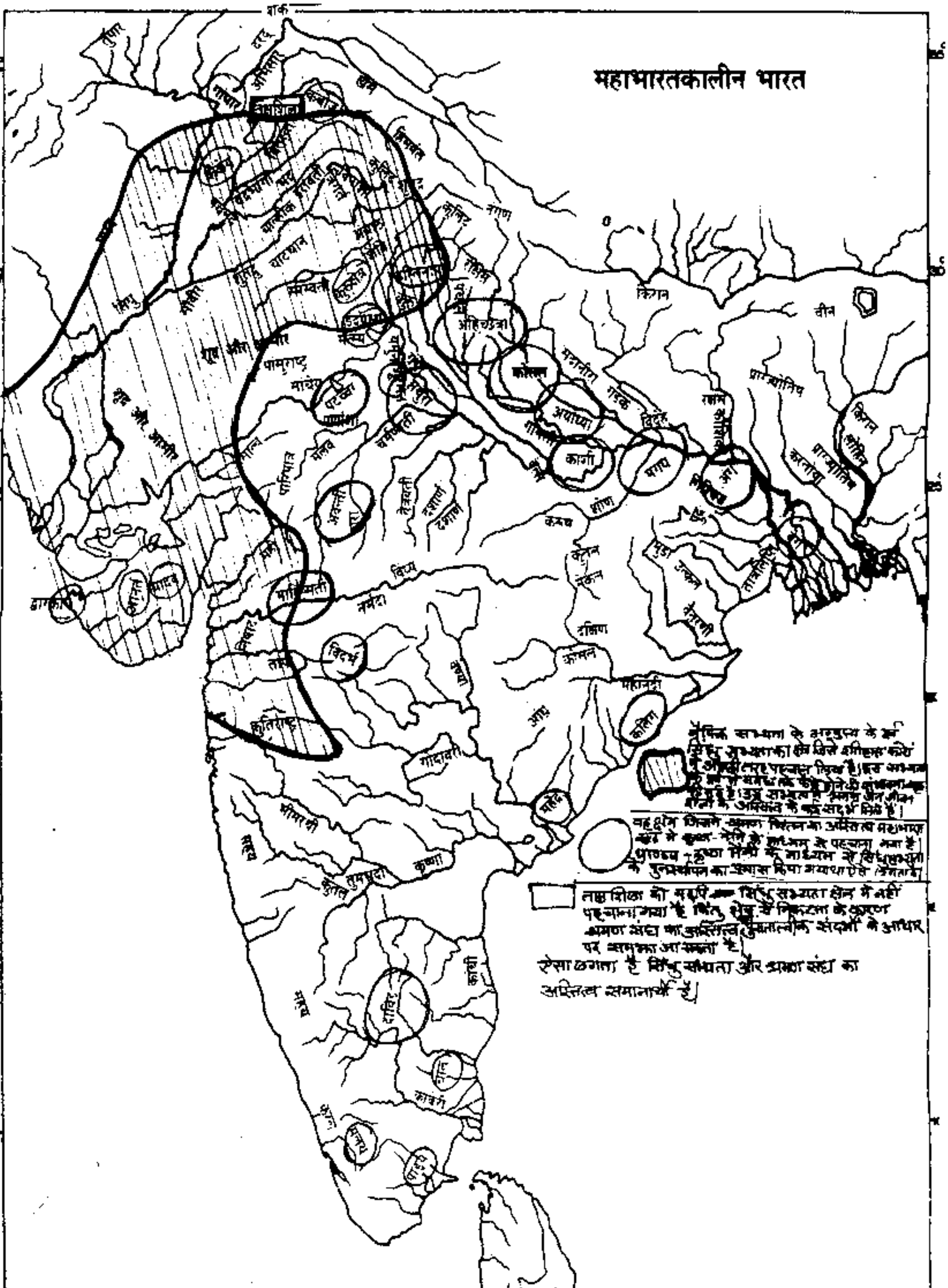
महाभारतकालीन भारत
अहिच्छत्रा
कोशल
अयोध्या
काशी
मगध
विदेह
प्राग्ज्योतिष
किरात
अवन्ती
माहिष्मती
विदर्भ
नर्मदा
गोदावरी
कृष्णा
भीमरथी
महानदी
कलिंग
कावेरी
ऐसा लगता है सिंधु सभ्यता और श्रमण संघ का
अस्तित्व समानार्थी है।

कि इस काल में जैन विद्याओं से पोषित, अनवरत चली आ रही नगरीय संस्कृति (सिंधु संस्कृति से चली आ रही) जो प्रजातंत्र की प्रकृति की थी, का अस्तित्व था। जैन मतावलंबियों के वंश महत्वपूर्ण थे। जैनावलंबी भी अच्छी संख्या में थे। महावीर के जीवन काल में ही 'जीवंत स्वामी' की काष्ठ प्रतिमा का होना कोई अनहोनी बात नहीं लगती। वीतभयपत्तन की भौगोलिक स्थिति पर गौर करें तो वह सिंधु संस्कृति से जुड़ा लगता है। हेमचंद्राचार्य ने जो विवरण 'जीवंत स्वामी' की मूर्ति के संदर्भ में दिये हैं वे भी पूर्णतः सच लगते हैं। इस क्षेत्र में जैन विद्याओं की उपस्थिति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

5. 530 ई.पू. से कुछ पहले फारस के एकेमेनिड सम्राट साइरस ने हिन्दकुश पर्वतमाला को पार करके कैम्बोज, गंधार तथा सिंधु पार क्षेत्र के जनों से कर प्राप्त किया। हेरोडोट्स ने एकेमेनिड साम्राज्य के अधिक जनसंख्या वाले एवम् समृद्ध प्रांतों की गणना करते समय गांधार की चर्चा बीसवें सत्रपी अर्थात् प्रांत के रूप में की है। तक्षशिला सभी विचारों का महत्वपूर्ण केन्द्र था। सर्वप्रथम सिंधु सभ्यता में प्रचलित श्रमण (जैन) विद्याओं, फिर वेद विद्याओं, फिर इरानी विद्याओं तथा उसके बाद बौद्ध विद्याओं का तक्षशिला पर प्रभाव रहा। तक्षशिला का नगर कई बार खंडहरों में बदला।[6] इसके पर्याप्त प्रमाण हैं।

6. कोसांबी से गंगा उपत्यका के ऊपर चलते हुए एक मुख्य मार्ग पंजाब के इस पार तक्षशिला तक जाता था जो पश्चिम के साथ स्थल व्यापार के लिए निर्गम मार्ग था। यह मार्ग सूचना का भी मुख्य साधन था।

7. तक्षशिला में अति प्राचीन स्तूपों की परंपरा थी। सम्यक विश्लेषण करके देखा जाय तो स्तूप परंपरा भी अति प्राचीन जैन परंपरा है जो बौद्ध परंपरा द्वारा अपना ली गई और समानान्तर रूप में भारत की सीमा पार भी इसे अपना लिया गया। मिस्र के पिरामिड इसी परंपरा से प्रेरित हैं।[10]

जान मार्शल ने तक्षशिला पर गहन खुदाई कार्य किया था और मार्शल का मत था कि सिरकप - तक्षशिला का स्तूप (ब्लाक 'एफ') एक जैन स्तूप रहा होगा क्योंकि इसके तलघर की देवकुलिका में बने कला प्रतीक दो दिखाये गये गरूढ़ की समता उन्हें मथुरा के आयागपट पर बने स्तूप के शिल्पांकन में मिली जिसे लोमशोभिका की पुत्री वासु ने निर्मित कराया था।[11] तक्षशिला को उत्तर पश्चिम से होने वाले सतत हमलों से कल्पनातीत दमन का सामना करना पड़ा होगा। इस्लाम के अंध दीवानों ने तो संभवतः विनाशलीला का तांडव ही किया होगा। फिर भी तक्षशिला से प्राप्त कुछ पुरावशेष तक्षशिला में जैन प्रभुत्व को दर्शाते हैं। चांदी के रोल पर खरोष्ठी लिपि में खुदा हुआ संदेश जो तक्षशिला के धर्मराजिका स्तूप से प्राप्त हुआ थो में अर्हतों को भी नमस्कार किया गया है।

8. सिकंदर, चंद्रगुप्त, चाणक्य, भद्रबाहु और नंदराजाओं का काल एक ही था। तक्षशिला इस समय भी परिवर्तन के बावजूद महत्वपूर्ण नगर था यद्यपि तक्षशिला के नये राजा आंभी ने सिकंदर का विरोध नहीं किया तथा सिकंदर का आधिपत्य स्वीकार कर लिया, तथापि सिकंदर तक्षशिला की संस्कृति व साधुओं से अत्यंत प्रभावित था। वहाँ के साधुओं की ओर सिकंदर आकृष्ट हुआ। इन साधुओं का जो वर्णन यूनानी संदर्भों से प्राप्त हुआ है वे श्रमण (जैन) लगते हैं। इन में से एक कल्याण मुनि को सिकंदर यूनान ले जाने के लिए अपने साथ ले गया था। यह सभी संदर्भ जैन विद्याओं और जैन संघ के प्रभुत्व को तक्षशिला में स्थापित करते हैं।

बौद्ध संघ का, बाद की शताब्दियों में तक्षशिला में प्रभुत्व सर्वविदित है। बहुत प्राचीन काल से चली आ रही जैन स्तूप परंपरा (आगमों - मूर्तियों - स्मरण चिन्हों को सुरक्षित रखने का स्थान) को तक्षशिला में पहचाना जाना, तक्षशिला के आस - पास यूनानी संदर्भों द्वारा जैन मुनियों को पहचाना जाना, बौद्ध संघ की आक्रामकता और उसके बाद यह विश्वास जैनों में चले आना कि बौद्ध धर्म के अनुयाइयों द्वारा जैन आगमों की होली जलाई गई जो 6 माह तक जलती रही, एक सीधा संदेश देता है कि यह अलिखित विश्वास सत्य होना चाहिए।

यह बात इसलिए भी सच लगती है कि चिंतनशील प्रवृत्ति का आत्मशोधी श्रमण अपनी बात को लिखे बिना नहीं रह सकता। भारत जैसे विशाल देश में जिस प्रकार ऋग्वेद पूर्व श्रमण संस्कृति को पहचाना जा रहा है, लिखित ग्रंथ होना ही चाहिए। अब उनका न मिलना इस बात की पुष्टि करते हैं कि 'उनकी होली जला दी गई।' इन आगमों के अस्तित्व को प्रकाशित करते हुए जर्मनी के डा. हावर ने अथर्ववेद के 15 वें काण्ड के संबंध में एक महत्वपूर्ण टिप्पणी की है ''ध्यानपूर्वक विवेचन के बाद मुझे स्पष्टतया विदित हो गया है कि यह प्रबंध प्राचीन भारत के ब्राह्मणेत्तर आर्य धर्म को मानने वाले व्रात्यों के उस वृहत वाङ्मय का कीमती अवशेष है जो प्राय: लुप्त हो गया है।[12] '' यह इतना स्पष्ट संकेत देता है कि व्रात्यों का अपना आगमों का एक विशाल भंडार था। विद्वानों द्वारा व्रात्यों को स्पष्ट रूप से श्रमण मान लिया गया है। व्रात्य, व्रतों की परंपरा मानने वाले चरित्रवान लोगों को ऋग्वेद द्वारा दिया गया नाम है।

9. तक्षशिला के संदर्भ में रोमिला थापर की यह टिप्पणी विचारणीय है कि 'अधिक कर्म कांडी ब्राम्हण इस प्रदेश को अपवित्र मानते थे, क्योंकि यह फारस के आधिपत्य में चला गया था (पृ. 51) यहाँ वैदिक व अन्य संदर्भों की ओर ध्यान दें तो कर्मकांडी ब्राम्हणों और कट्टर वैदिकता के समर्थकों के मध्य तक्षशिला को ऋग्वेद के काल से ही मान्यता प्राप्त नहीं थी क्योंकि तक्षशिला शक्तिशाली श्रमणकेन्द्र के रूप में स्थापित था। गांधार प्रदेश के प्रति विद्वेष भाव अथर्ववेद में भी (5.22.14) पहचाना गया है। जिसमें प्रार्थना की गई है 'गन्धारियों, भुजवन्तों, अंगों तथा मगधों के देश में ज्वर फैले'। संभवत: यह दुर्भावना इसलिए थी कि यह प्रदेश वैदिक विद्याओं को नहीं जैन विद्याओं को अपनाये हुए थे।

आगमों की यह होली कब जली होगी इस पर थोड़ा विचार करना लाभप्रद होगा।

1. भगवान बुद्ध का निर्वाण 544 ई.पू. में हुआ। भगवान महावीर का निर्वाण 527 ई.पू. में हुआ।
2. 530 ई.पू. से कुछ पहले फारस के एकेमेनिड सम्राट साईरस ने कंबोज, गंधार तथा सिंधु क्षेत्र में अपना प्रभुत्व स्थापित किया था।[13] फारसी विचारों का प्रभाव भारतीय जीवन के विविध क्षेत्रों में अनुभव किया गया। भारत फारस के बीच सर्वाधिक रोचक आदान - प्रदान कुछ शताब्दियों के पश्चात् बौद्ध धर्म के विकास के साथ घटित हुआ जब बौद्धमत के आरंभिक विचारों ने फारस के दार्शनिक एवम् धार्मिक आंदोलनों की ओर अधिक पश्चिम तक प्रभावित किया। यह ई.पू. 330 के पहले की स्थिति होना चाहिए क्योंकि सिकंदर के ई.पू. 330 में फारस को जीत लेने के बाद फारस का इन क्षेत्रों पर प्रभाव समाप्त हो गया। बौद्धमत की महायान शाखा को झोरीष्ट्रीयन धर्म ने प्रभावित किया इससे यह अनुमान लगाना संभव है कि ई.पू. 330 से पहले बौद्ध धर्म (विशेष कर महायान शाखा) का प्रभाव इस क्षेत्र में बढ़ गया होगा। इस काल में इस क्षेत्र में चार धार्मिक आंदोलन दिखाई देते है। जैन, बौद्ध, झोराष्ट्रीयन और

वैदिक धर्मों के अनुयायी इस काल में पहचाने जाते हैं। इनमें से बौद्ध और जैन संघर्ष सरलता से समझा जा सकता है और इसी संघर्ष का शिकार तक्षशिला का विशाल जैन आगम संग्रह हुआ। बौद्धों के लिए विद्याओं का लिखित रूप होना एक नई बात थी क्योंकि बौद्धों के धर्म सूत्र बुद्ध की मृत्यु के लगभग 500 वर्ष बाद संग्रहीत किये गये।[14] ऐसा लगता है, चंद्रगुप्त और चाणक्य इसी काल में इस क्षेत्र में अपने 'नंद हटाओ' अभियान के अंतर्गत आये होंगे। उनकी तक्षशिला क्षेत्र की यात्रा ने यह स्पष्ट कर दिया होगा कि जैन विद्याओं की जो होली जली है उस परिप्रेक्ष्य में तुरंत जैन आचार्यों को एकत्रित होकर अपने आगमों को व्यवस्थित करना चाहिए। इसी का परिणाम है कि चंद्रगुप्त के राज्यारोहण के तुरंत बाद जैन संगीति का आयोजन किया गया। इस संगीति की तैयारी प्रक्रिया में कुछ ऐसी स्थिति पैदा हुई कि भद्रबाहु इस संगीति में उपस्थित नहीं हुए। यह वह संकेत है जो विषम परिस्थितियों में से गुजर रहे जैन संघ की ओर प्रकाश डालता है। भद्रबाहु जैन विद्याओं के अधिकारी व्यक्ति थे और उनका संगीति में उपस्थिति नहीं होना संगीति की सार्थकता पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। ऐसा लगता है पूर्व और मध्य भारत के क्षेत्र में श्रेणिक, बिम्बसार, उदयन, नन्द और चन्द्रगुप्त के राजकीय प्रश्रय में जैन संघ सुविधा भोगी हो गया हो। हो सकता है बौद्ध समूह उत्तर पश्चिम की तरफ तथा दक्षिण की ओर चला गया हो। बौद्ध धर्म का महायान आन्दोलन दक्षिण में ही पनपा और बाद में प्रसार पाया। प्रारंभ में राजकीय प्रश्रय की अनुपस्थिति में बौद्ध संघ, जैन संघ से अधिक नाराज हो गया हो और तक्षशिला का होली कांड उसका ही परिणाम हो।

3. तक्षशिला क्षेत्र का तत्कालीन जैन संघ भी अपनी आगमथाती को सम्हालने में अक्षम लगता है। लगातार विदेशी राज्य, ब्राम्हण और बौद्ध धर्म के दबाव में यह क्षेत्र अलग थलग पड़ गया हो। इस अलगाव को इतिहासकारों ने पहचाना है। राजनैतिक परिस्थिति समस्त उत्तर भारत की इस समय के आपसी संघर्ष व परिवर्तन को रेखांकित करती है। उत्तर पश्चिम में पुरू और आंभी के दो शक्ति केन्द्र नजर आते हैं और पूर्वांचल में नंद और खारवेल वंश नजर आता है। पुरू और आंभी का संघर्ष तथा नन्द और खाखेल का संघर्ष इतिहास सिद्ध है। आंभी ने बिना युद्ध सिदंकर का प्रभुत्व स्वीकार किया था इन सब की अंतधाराओं का मूल्यांकन आवश्यक है। आंभी के राज्य में यदि यह होली जली तो भी क्यों? क्या आंभी का प्रश्रय इस दहन को था? तक्षशिला आंभी की राजधानी थी और छः महीने चलने वाली होली किसी राजा की आंख से ओझल नहीं रह सकती। 'होली जलना' कभी-कभी कहावत रूप में व्यक्त होता है पर उसका अर्थ होता है नष्ट कर देना। हो सकता है यह किंवदंती वास्तविक अग्नि से जुड़ी न हो किन्तु विनाशलीला से तो इसका आशय है ही।

पूर्वी व मध्य भारत भी, चंद्रगुप्त, चाणक्य, भद्रबाहु की शक्तिशाली एकजुटता के बाद भी जैन संघ को विभाजन से नहीं रोक सका। इसीलिए तो खारवेल को शिलालेख में अंकित करना पड़ा 'मौर्यकाल में विच्छिन्न हुए चौंसठ भागवाले चौगुने अंग साप्तिक का उसने उद्धार किया।' चंद्रगुप्त मौर्य के समय में जैन मूल ग्रन्थों के विनाश को लेकर जैन परम्परा में जो विवाद चलता है, इसका लेख के उक्त पाठ से आश्चर्यजनक समर्थन होता है। इसमें यह स्पष्ट है कि उड़ीसा जैन धर्म के उस संप्रदाय का अनुयायी था जिसने चंद्रगुप्त के राज्य में पाटलीपुत्र में होने वाली वाचना में संकलित आगमों को स्वीकार नहीं किया था।

तक्षशिला आज पाकिस्तान में है। क्या जैन जन मानस में छिपी इस होली की

गर्मी को महसूस नहीं करना चाहिए? क्या प्रबुद्ध जैन तीर्थ यात्रियों को तक्षशिला के दर्शन नहीं करना चाहिए? क्या जैन इतिहासकारों को इस किवदंती के सत्य से हमें परिचित नहीं कराना चाहिए? कोई हानि नहीं यदि यह किवदंती असत्य सिद्ध हो जाय पर यदि सत्य के दायरे में आ जाय तो जैन धर्म की प्राचीनता, इतिहास सम्मत हो जायेगी और हमें जैन साहित्य का यह इतिहास कि 'जैन साहित्य के उद्‌गम की कथा का आरंभ भगवान महावीर से होता है' लिखने के पूर्व दो बार सोचना पड़ेगा। यह साहित्य भगवान महावीर के पूर्व था। स्वयं भगवान महावीर ने अपने समय में उपस्थित किसी चर्चा को अव्याकृत कहकर अलक्षित या उपेक्षित नहीं किया था। संभवतः सब लिखित गूढ़ विषयों को उन्होंने स्पष्ट किया था। पूछे गये प्रश्नों का आधार भी लिखित साहित्य ही था। इन्द्रभूति किस प्रश्न का समाधान करने महावीर के पास आये थे?

भारत में धर्म की जो धारा बह रही है वह इस सत्य को समझ लेने से कोई उल्टी नहीं बहने लगेगी। कोई इस धारा को उल्टा बहाने का साहस भी नहीं कर सकता। इस देश में जिसे हम धर्माचरण कहते हैं वह सब धर्मों का मिला जुला प्रभाव है। इसका तात्पर्य यह नहीं होता कि हम समयसार को उपनिषद समझ लें। उपनिषद कर्त्ताओं ने समयसार को अपना कर जो तत्व दर्शन फैलाया वह समयसार से बहुत भिन्न है। गीता ने भी आत्मा के बारे में जो कुछ समझाया वह समयसार से बहुत भिन्न है। इसका अर्थ यह नहीं कि हम अपनी जिव्हा से कटु आलोचना करें। संभवतः अपना कर्त्तव्य तो यह होना चहिए कि जो समयसार में लिखा है उसे सरल सुबोध माध्यम से जैन धर्म के बंधन से मुक्त जन - जन तक पहुँचायें।

'मिथ' झूठ नहीं - सत्य को कहने का अन्य तरीका है। इसी संदर्भ में आचार्य रजनीश का यह सोचना कि 'इतिहास का आग्रह यह होता है कि बाहर की घटी हुई घटनायें, तथ्य फैक्ट्स की तरह संग्रहीत हों। पुराण या मिथ इस बात पर जोर देती है कि बाहर की घटनाएं तथ्य की तरह इकट्ठी हों या न हों, निष्प्रयोजन वे इस भांति इकट्ठी हों कि जब कोई इनसे गुजरे, तो इसके भीतर कुछ घटित हो जाय'।

तक्षशिला में पाकिस्तान द्वारा युद्धज टैंकों का निर्माण करना तक्षशिला के विनाश की एक नई कहानी का सूत्रपात है। अतः तक्षशिला से जुड़े सत्य और किंवदंतियों का अब लिखित रूप में बदल जाना अत्यंत आवश्यक है।

संदर्भ -

1. श्री रामशरण शर्मा : प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवम् सामाजिक संरचनाएं - पृ. 37
2. पी.एन. ओक . विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय - पृ. 45, 62, 92
3. पुरुषोत्तम जैन एवम् रवीन्द्र जैन, अर्हत् वचन (इन्दौर), वर्ष 11, अंक - 2 - पृ. 44
4. राधाकुमुद मुकर्जी : हिन्दू सभ्यता - पृ. 31
5. राधाकुमुद मुकर्जी : हिन्दू सभ्यता - पृ. 104 - 135
6. Grammery : Websters Encyclopedic Dictionary पृ. 1457
7. रोमिला थापर : भारत का इतिहास पृ. 43
8. रोमिला थापर : वही : पृ. 45
9. रोमिला थापर : वही : पृ. 51
10. स्वयं के अध्ययन के आधार पर : क्या स्तूप परंपरा जैन परंपरा है? अप्रकाशित
11. जान मार्शल : Taxila Vol. I, Cambridge, 1951 P.P. 256-57, National Musew Collection
12. कैलाशचंद्र शास्त्री . जैन साहित्य का इतिहास (पूर्व पीठिका) पृ. 60
13. रोमिला थापर : वही पृ. 50
14. रोमिला थापर : वही पृ. 59
15. ओशो (आचार्य रजनीश) . महावीर मेरी दृष्टि में : पृ. 27

प्राप्त - 15.8.99

वर्ष - 11, अंक - 4, अक्टूबर 99, 19 - 24

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

गोम्मटसार का नामकरण

■ दिपक जाधव *

सारांश

गंग नरेशों के मंत्री और महासेनापति श्रीमद् चामुण्डराय के बाल्यावस्था के नाम 'गोम्मट' पर दसवीं शताब्दी के आचार्य नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने उनके द्वारा संपादित ग्रंथ का नाम 'गोम्मटसार' रखा है।

1. प्रस्तावना - दसवीं शताब्दी के दिगम्बराचार्य नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने 'गोम्मटसार' नामक महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की हैं। ग्रंथ का नाम यही क्यों रखा गया? इस प्रश्न के उत्तर को जानना ही इस आलेख का इष्ट है। इस हेतु कुछ आधारभूत तथ्यों को प्रस्तुत करना अनिवार्य है ताकि युक्तियुक्त परिकल्पना की जा सके। आधारभूत तथ्यों के प्रस्तुतीकरण में टीकाकार जे.एल. जैनी, इतिहासमनीषी डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन, पुरातत्वविद् टी.व्ही.जी. शास्त्री एवं देवेन्द्र कुमार शास्त्री के शोध कार्यों से सहायता ली गई है।

2. श्रवणबेलगोल - दक्षिणापथ के भूभाग पर वर्तमान कर्नाटक प्रदेश के हासन जिले में विन्ध्यगिरि एवं चंद्रगिरि के मध्य में श्रवणबेलगोल स्थित है। इसका पूरा नाम भूतपूर्व मैसूर राज्य के दीवान की दिनांक 28 मार्च 1810 ई. की सनद् में प्राप्त होता है। नाम तो इसके बहुत पूर्व से प्रचलित रहा है, किन्तु स्पष्ट कब से हुआ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। बारहवीं शती में प्रथम चारुकीर्ति स्वामी द्वारा यहाँ भट्टारकीय पीठ की विधिवत् स्थापना होने के पश्चात् ही ऐसा हुआ हो, यह ज्योतिप्रसादजी को प्रतीत होता है।

सातवीं शती से ही शिलालेखों में 'बेलगोल' नाम का प्रयोग प्राप्त होने लगता है और मध्यकाल के अनेक अभिलेखों में बेल्गुल, बेलगोल, बेल्गोलपुर आदि नामों का प्रयोग इस तीर्थ के लिए हुआ प्राप्त होता है। श्रवणबेलगोल का अभिप्राय है 'श्रमणों का श्वेत सरोवर'। इससे सम्प्रेषित होता है कि यहाँ अतिप्राचीनकाल से कोई प्राकृतिक श्वेत सरोवर रहा हो जिसके तटवर्ती प्रदेश में अनेक निर्ग्रन्थ श्रमण मुनि तपस्यारत रहते थे। कतिपय शिलालेखों में इस नगर का संस्कृत पर्यायवाची नाम धवलसर या धवलसरोवर भी प्राप्त होता है। इस नगर के निकटवर्ती क्षेत्र में हले - बेल्गोल और कोडि - बेल्गोल नाम के दो अन्य स्थान भी है। भिन्नत्व सूचित करने के लिए इस नगर को 'श्रवणबेलगोल' नाम दिया गया होगा। इसका पर्याप्त प्राचीन नाम 'कलवप्पु' रहा है, जिसका संस्कृत रूपान्तर 'कटवप्र' है।

प्राचीनतम स्थानीय शिलालेखों तथा साहित्यिक अनुश्रुतियों से विदित होता है कि ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में उत्तर भारत में बारह वर्ष के भीषण दुष्काल का पूर्वाभास पाकर अंतिम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु अपने बारह हजार दिगम्बर मुनि शिष्यों सहित विहार करके दक्षिणापथ के इसी कटवप्र नामक पर्वत पर आकर विराजे थे। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त ने भी राजपाट त्यागकर उनका अनुगमन किया। श्रवणबेलगोल में चन्द्रगिरि वही पर्वत है जिस पर चन्द्रगुप्त ने तपस्या की और अन्त में समाधिमरण किया। ऐसी भी अनुश्रुति है कि

* शोध छात्र - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर - 452 001
व्याख्याता - गणित, जवाहरलाल नेहरू शास. आदर्श उ. मा. विद्यालय, बड़वानी (म.प्र.)

भद्रबाहु चन्द्रगुप्त के समय में ही यहाँ सात सौ अन्य मुनिपुंगवों ने भी समाधिमरण किया था।

गंग, राष्ट्रकूट, कदम्ब, चालुक्य, होयसल, विजयनगर आदि दक्षिणी राजवंशों के अनेक नरेशों, महारानियों, धनीमानी श्रेष्ठियों और अनगिनत धर्मप्राण श्रावक-श्राविकाओं के संरक्षण एवं पोषण ने इस तीर्थ क्षेत्र को सुन्दर जिनालयों एवं स्मारकों से अलंकृत कर दिया हैं। यह मात्र तपोभूमि, सिद्धभूमि और अतिशय क्षेत्र ही नहीं रहा वरन् अनेक आचार्यों, भट्टारकों, विद्वानों और कवियों के प्रसाद से एक महान ज्ञानपीठ और सांस्कृतिक केंद्र हो गया। यह शिक्षा और दीक्षा की कर्मस्थली बन गया था। यहाँ के ज्ञान केन्द्र की तुलना तत्कालीन सुप्रसिद्ध नालन्दा विश्वविद्यालय से की गयी हैं।

3. <u>बाहुबली प्रतिमा</u> – विन्ध्यगिरि के शिखर पर भगवान बाहुबली की 57 फुट उत्तुंग अद्वितीय प्रतिमा की स्थापना से इस स्थान की ख्याति विश्वप्रसिद्ध हैं। यह प्रतिमा एकल ठोस ग्रेनाइट चट्टान से काटी गई है। इस प्रतिमा में विशालता, रूप, सौन्दर्य और देवातिशय का ऐसा सुयोग बन गया है कि उसकी छटा अपूर्व हो गई है।

इस प्रतिमा को गोम्मटेश, गोम्मटेश्वर, गोम्मटनाथ, गोम्मटस्वामी, गोम्मटदेव आदि नामों से जाना जाता है। परन्तु आचार्य नेमिचंद्र ने इसके लिए 'दक्षिण कुक्कुटजिन' नाम का प्रयोग किया है।

बाहुबली प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र थे। भगवान ऋषभदेव मूलतः एक राजा थे तथा उनकी नन्दा और सुनन्दा नाम की दो पत्नियाँ थी। बाहुबली की माता सुनन्दा तथा बहन सुन्दरी थी। माता नन्दा का पुत्र भरत और पुत्री ब्राह्मी थी। बाहुबली पोत्तनपुर के नरेश थे।

ऐसी कथा है कि बाहुबली का उनके बड़े भाई भरत से युद्ध हो गया तथा उन्होंने उसे पराजित कर दिया। तदुपरान्त वे इतने दुखी हो गए कि उन्होंने सारा राजपाट त्यागकर सन्यास ग्रहण कर लिया और वर्षपर्यन्त अचल उपवासरत रहते हुए खड़े रहे। वह पिता से भी पूर्व निर्वाण प्राप्त करके अवसर्पिणी के प्रथम मोक्षगामी हुए।

संभवतः इसीलिए कविवर बोप्पण 'सुजनोत्तंस' ने लिखा है कि यह अनुपम प्रतिमा विग्रह लोक के लिए सतत देशना कर रही है कि कोई भी प्राणी हिंसा, असत्य, स्तेय, कुशील और परिग्रह में सुख न माने, अन्यथा मनुष्य जन्म वृथा चला जायेगा।

4. <u>चामुण्डराय</u> – इस प्रतिमा का निर्माण गंगनरेशों के विचक्षण मंत्री और महानसेनापति चामुण्डराय ने कराया था। उन्होंने इन पदों को मरूलदेव (953 - 961 ई.), मारसिंह (961 - 974 ई.), राजमल्ल (974 - 984 ई.) और रक्कस गंगराज (985 ई.) के शासन कालों में सुशोभित किया।

चामुण्डराय ने शूरवीरता, साहस और पराक्रम के लिए बड़ी ख्याति अर्जित की थी। जब वह युद्ध के लिए निकलता था तो उसके शत्रु भयभीत खरहों की भाँति शरण की खोज में दुबकते फिरते। राजादित्य को घायल करने में उसने आश्चर्यजनक हस्तकौशल दिखलाया, राच नामक महाबली शत्रु सामंत के टुकड़े-टुकड़े कर डाले और गोविंदराज को करारी हार दी थी।

शूरवीरता के लिए उसे अनेक उपाधियाँ दी गई थी। रोडग के युद्ध में वज्वलदेव को पराजित करने पर उसे 'समर-धुरन्धर', गोनूर के युद्ध में नोलम्बो को पराजित करने

पर 'वीरमार्तण्ड', उच्छंगी के दुर्ग में राजादित्य को छकाने पर 'रणरंगसिंह', बागेयूर के दुर्ग में त्रिभुवनवीर को मारने और गोविन्दर को उस दुर्ग में प्रविष्ठ कराने के लिए ''वैरिकुलकालदण्ड' तथा विविध युद्ध विजयों के उपलक्ष में 'भुजविक्रम', 'भट्टमारि', 'प्रतिपक्षराक्षस', 'नोलम्बकुलान्तक', 'समर केसरी', 'सुभटचूड़ामणि', 'समरपरशुराम' आदि उपाधियाँ प्राप्त हुई।

सदाचरण एवं धार्मिक कृत्यों के लिए चामुण्डराय को 'सम्यक्त्वरत्नाकर', 'सत्ययुधिष्ठर', 'देवराज', 'गुणकाव', 'गुणरत्नभूषण' जैसी सार्थक उपाधियाँ प्रदान की गई।

चामुण्डराय के अन्य उपनाम अण्णराय, गोम्मट और गोम्मटराय भी थे। उसकी स्नेहमयी जननी का नाम काललदेवी था। वह तीर्थंकर नेमिनाथ और भगवान बाहुबली का परमभक्त था। उसके कुलगुरू अजितसेनाचार्य थे। ऐसा कहा जाता है कि अजितसेनाचार्य ने ही उसे बाहुबली की प्रतिमा के निर्माण के लिए प्रेरणा दी थी।

वह सुदक्ष सैन्य संचालक, राजनीतिज्ञ और परमस्वामीभक्त होने के अतिरिक्त कन्नड़, संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं का विद्वान, कवि, टीकाकार, कलाकारों का प्रश्रयदाता और एक महान प्रश्नकर्त्ता भी था।

5. नेमिचंद्राचार्य - चामुण्डराय के जैन दर्शन विषय के विद्या गुरु आचार्य नेमिचंद्र थे। आचार्य को सिद्धान्तचक्रवर्ती के रूप में जाना जाता था। क्योंकि उन्होंने अपनी बुद्धि से जीवस्थान, क्षुद्रबंध, बंधस्वामी, वेदना खंड, वर्गणा खंड और महाबंध नामक छह खंडरूप सिद्धान्त शास्त्र को सम्यक् रूप से जाना था जिस प्रकार कि चक्रवर्ती ने भरतक्षेत्र के छः खंडों को अपने वश में किया। उनके ग्रंथों से परिलक्षित होता है कि करणानुयोग पर उनका विशेष अधिकार था। सीमित शब्दों में आचार्य अपने समय के सर्वश्रेष्ठ विद्वान थे।

आचार्य नेमिचंद्र और आचार्य अजितसेन की उपस्थिति में ही श्रवणबेलगोल में स्थित बाहुबली की प्रतिमा की प्रतिष्ठापना रविवार, 13 मार्च 981 ई. को कराई गई थी।

डा. ज्योतिप्रसाद जैन का ऐसा मत है कि चामुण्डराय और आचार्य नेमिचंद्र मूलतः एक ही ग्राम में जन्में, पड़ोसी और घनिष्ठ मित्र या निकट संबंधी रहे है। कालान्तर में पहला महासेनापति हो गया, तो दूसरा दीक्षा लेकर एक महान जैनाचार्य।

नेमिचंद्राचार्य ने चामुण्डराय को सदा-सदा के लिए तीन महान कार्य के लिए अमर घोषित किया है। पहला उनके द्वारा चामुण्डराय के लिए लिखा गया ग्रंथ 'गोम्मटसार', दूसरा चंद्रगिरि पर स्थापित मंदिर में विराजमान नेमिनाथ भगवान की एक हस्तप्रमाण इन्द्रनीलमणि की प्रतिमा और तीसरा बाहुबली की प्रसिद्ध मूर्ति 'दक्षिण कुक्कुटजिन'।

6. गोम्मटसार - इस ग्रंथ की रचना आचार्य नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने की है। स्वयं उनके अनुसार इस ग्रंथ की रचना उन्होंने चामुण्डराय के लिए की है।

संसार में जीव और कर्म कें संयोग से जो पर्यायें आती है, उनका विस्तार से वर्णन इस ग्रंथ में किया गया है। इसमें तर्क-विधान, प्रमाण और नय द्वारा जैन दर्शन को स्थापित किया गया है। इसका आधार ग्रंथ धवला आदि को माना जाता है। इसका पूर्व भाग 'जीवकाण्ड' कहलाता है, जिसमें 734 गाथाएं है। इसमें जीव के अनेक अंशुद्ध अवस्थाओं का या भावों का वर्णन हैं। इसकी रचना पहले पाँच खंडों से गई है। गोम्मटसार का उत्तर भाग 'कर्मकाण्ड' कहलाता है। इसमें 972 गाथाएं है। इसमें कर्मों की अनेक अवस्थाओं का वर्णन है। इसकी रचना महाबंध से की गई है।

इस ग्रंथ की विषय वस्तु इसके पूर्व के ग्रंथों से ही ली गई है। किन्तु वह संवर्धित

रूप में तथा गणितीय साधन पर आधारित हैं।

7. नाम रहस्य धारणाएं - चामुण्डराय को गोम्मटराय, आचार्य द्वारा संपादित ग्रंथ को गोम्मटसार, चंद्रगिरि को गोम्मटगिरि और उस पर स्थित जिनालय में भगवान नेमिनाथ को गोम्मटजिन तथा बाहुबली प्रतिमा (दक्षिण कुक्कुटजिन) को गोम्मटेश्वर क्यों कहा गया है? इस प्रश्न पर ऊहापोह करने वाले सभी विद्वान अपनी - अपनी धारणाएं लेकर चले है।

7.1 प्रारंभिक धारणा - शरत्चन्द्र घोषाल, नाथूराम प्रेमी, श्रीकंठ शास्त्री, हीरालाल जैन आदि विद्वान यह मानकर चले है कि भगवान बाहुबली का ही अपरनाम गोम्मट था। गोविंद पै. ने गोम्मट शब्द को संस्कृत के 'मन्मथ' का अपभ्रष्ट रूप सिद्ध करने का प्रयास किया है।

जे.एल. जैनी ने 'गोम्मट' को भगवान महावीर के लिए प्रयुक्त बताया है। उन्होंने इसका संधि विग्रह भी किया है। 'गो' का अभिप्राय (दिव्य) वाणी है तथा 'मठ' का अभिप्राय है निवास। इस प्रकार गोम्मट का अर्थ होता है दिव्य ध्वनि का निवास।

7.2 उपाध्ये की धारणा - डॉ. ए.एन. उपाध्ये के अनुसार गोम्मट शब्द मूलतः प्राकृत या संस्कृत भाषा का नहीं वरन् देशज है, जो थोड़े - थोड़े अंतर को लिए हुए कन्नड़, मराठी, कोंकणी एवं तेलुगू में पाया जाता है, जिसका अर्थ उत्तम, आकर्षक, प्रसन्न करने वाला आदि होता है। उनका यह भी अनुमान है कि चामुण्डराय का घरेलू नाम ही गोम्मट रहा होगा। आज भी मराठी भाषी लोग गौर वर्ण एवं सुन्दर बालक को 'गोरा गोमटा' कहते हैं।

8. परिकल्पना एवं उसके चरण - 'गोम्मटसार' के नामकरण हेतु उत्तरोत्तर चरण पर परिकल्पना को इस प्रकार विकसित किया जा सकता है।

8.1 उपाध्ये की धारणा को अनुमत करके यह कहा जा सकता है कि चामुण्डराय बाल्यावस्था में सुन्दर ओर आकर्षक होगा। इसी कारण माता काललदेवी उसे गोम्मट कहती होगी।

8.2 गोम्मट बड़ा होकर महासेनापति चामुण्डराय हो गया। अनेक युद्धों को जीतने के पश्चात् उसकी मनोदशा भी धीरे - धीरे वैसी ही हुई होगी जैसा कि बाहुबली की भरत को पराजित करने पर तथा सम्राट अशोक की कलिंग युद्धोपरान्त हुई। चामुण्डराय के पास इन राजाओं की तरह त्यागने के लिए कोई राजपाट नहीं था। वह मात्र गंगनरेशों का मंत्री और महासेनापति था।

8.3 गंगवंश के साम्राज्य में सर्वत्र जैन धर्म का प्रभाव था। स्वयं चामुण्डराय का परिवार इस धर्म का अनुयायी था। हमें ऐसा लगता कि काललदेवी ने ही चामुण्डराय को परामर्श दिया होगा कि वह जैनाचार्यों की पूर्णकालिक शरण ले ताकि इस योद्धा की मनोदशा स्थिर हो सके। यह बहुत संभव है कि सबसे पहले उसे कुलगुरु अजितसेनाचार्य की शरण में ले जाया गया होगा।

8.4 अजितसेनाचार्य ने निदान किया होगा कि उसे पूर्णकालिक विद्यागुरू की आवश्यकता है तथा इस हेतु तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती का नाम प्रस्तावित किया होगा।

8.5 ऐसा लगता कि नेमिचंद्राचार्य उस समय श्रवणबेलगोल में ही होंगे अथवा उन्हें विशेष आग्रह करके यहाँ आमंत्रित किया गया होगा। आचार्य के समक्ष चामुण्डराय ने प्रश्न रूप में अनेक संदेहों को प्रकट किया होगा। जिनके आधार पर उन्होंने निर्धारित किया होगा

कि संसार में जीव और कर्म के संयोग से जो पर्यायें आती हैं, उनके विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता चामुण्डराय को है।

चामुण्डराय के प्रश्नों के उत्तर आचार्य ने धवला आदि ग्रंथों के आधार पर तर्क विधान, प्रमाण और नय द्वारा दिए होंगे, जिसमें सिद्धान्तशास्त्र समाहित होता गया होगा।

आचार्य ने तत्काल यह अनुभव किया होगा कि चामुण्डराय जैसे अनेक व्यक्तियों को इस ज्ञान की आवश्यकता है, तो क्यों नहीं फिर इन उत्तरों को लेखबद्ध किया जाए। इसी विचार से ग्रंथ लिखना प्रारंभ हुआ होगा, जो योद्धा के संदेह निरस्त करके समाप्त हुआ।

ग्रंथ में बाहुबली प्रतिमा (दक्षिण कुक्कुटजिन) के उल्लेख के आधार पर कहा जा सकता है कि ग्रंथ का पूर्ण संपादन प्रतिष्ठापना समारोह के पश्चात् ही हुआ है। इस समारोह के पश्चात् चामुण्डराय ने सांसरिक जीवन त्याग दिया हो, यह बहुत संभव है। त्यागी शिष्य और सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य के बीच बहुत शास्त्रार्थ हुआ होगा, जो ग्रंथ निर्माण में फलित हुआ।

8.6 ग्रंथ निर्माण का जो कारण बना उसी के नाम पर इसका नामकरण किया जाना चाहिए। ऐसा आचार्य ने ग्रंथ के पूर्ण संपादन के पश्चात् सोचा होगा।

8.7 चामुण्डराय के बाल्यावस्था के नाम नेमिचंद्राचार्य के ध्यान में कैसे आया? इसकी दो संभावनाएं है। पहली संभावना यह है कि काललदेवी द्वारा आचार्य के समक्ष चामुण्डराय को 'गोम्मट' नाम से संबोधित किया जाना, जो आचार्य को भी प्रिय लगता होगा। दूसरी संभावना यह है कि यदि डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन का मत सही है, तो आचार्य को अपने बालसखा का नाम 'गोम्मट' याद होगा।

'सार' का अभिप्राय है 'घना तात्पर्य'। गोम्मटसार पूर्ववर्ती ग्रंथों का सार है।

अतएव ऐसे सार रूप ग्रंथ का नाम चामुण्डराय के नाम पर 'गोम्मटसार' रखा गया। उसने इस ग्रंथ पर आचार्य के समक्ष ही 'वीरमार्तण्डी' नामक कन्नड़ टीका की रचना की।

9. टिप्पणियाँ एवं अन्य अभिमत -

9.1 यद्यपि दोनों धारणाएं कोई ठोस समसामयिक आधार या लक्ष्य प्रस्तुत नहीं करती तथापि उपाध्ये की धारणा शब्द प्रचलन के आधार पर सुसंगत है।

9.2. चामुण्डराय का घरेलू नाम 'गोम्मट' ही प्रतिष्ठापित बाहुबली, चंद्रगिरि, उक्त स्थानों आदि के लिए समय के साथ - साथ प्रयुक्त हुआ होगा।

9.3 इस संभावना से विमुख नहीं हुआ जा सकता कि चामुण्डराय ने बाहुबली प्रतिष्ठापना समारोह में पहली बार आचार्य नेमिचंद्र के दर्शन किए हो। इससे प्रस्तुत परिकल्पना बहुत अधिक प्रभावित नहीं होती है।

9.4 ऐसी भी श्रुति है कि एक बार आचार्य नेमिचंद्र धवला आदि महा सिद्धान्त ग्रंथों में से किसी सिद्धान्त ग्रंथ का स्वाध्याय कर रहे थे। उसी समय गुरू का दर्शन करने के लिए चामुण्डराय भी आए। शिष्य को आता देखकर आचार्य ने स्वाध्याय करना बन्द कर दिया। चामुण्डराय नमस्कार करके बैठ गए तब उसने पूछा कि आचार्य आपने ऐसा क्यों किया? तब आचार्य ने कहा कि श्रावक को इस ग्रंथ को सुनने का अधिकार नहीं

है। इस पर चामुण्डराय ने कहा कि हमको इन ग्रंथों का अवबोध किस तरह हो सकता है? कृपया कोई ऐसा उपाय निकालिए कि जिससे हम भी इनका महत्वानुभव कर सके। इसी कारण से आचर्य ने सिद्धान्त ग्रंथों का सार लेकर गोम्मटसार ग्रंथ की रचना की।

कृतज्ञता ज्ञापन - लेखक प्रस्तुत आलेख के विकास में प्रदत्त मार्गदर्शन एवं परामर्श के लिए डा. अनुपम जैन, सहायक प्राध्यापक - गणित, शा. स्वशासी होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर का आभारी है।

संदर्भ ग्रंथ -

1. Ghoshal, Sarat Chandra, *Davva - Samgaha*, The Central Jaina Publishing House, Arrah, 1917
2. जैन, ज्योतिप्रसाद, *श्रवणबेलगोल और गोम्मटेश्वर बाहुबली,* महाभिषेक स्मरणिका, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, श्री वीर निर्वाण ग्रंथ प्रकाशन समिति, इन्दौर, 1981
3. Jain Laxmichandra & Jain Anupam, *Philosopher Mathematicians*, Digambara Jain Institute of Cosmographic Research, Hastinapur (Meerut), 1985
4. जैन, पं. खूबचन्द्र, गोम्मटसार (जीवकाण्ड), श्रीमद राजचंद्र आश्रम, अगास, 1985
5. Jaini, J.L. *Gommatasāra (Jiva - Kānda)*, The Central Jaina Publishing House, Ajitashram, Lucknow, 1927
6. शास्त्री, देवेन्द्रकुमार, *चामुण्डराय के गुरुद्वय,* महाभिषेक स्मरणिका, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर, 1981
7. शास्त्री, पं. मनोहरलाल, *गोम्मटसार (कर्मकाण्ड),* श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल, श्रीमद राजचंद्र आश्रम, अगास, 1986
8. Sastri, T.V.G., *Gommateśvara of Śravaṇabelgola*, Arhat Vacana, 6(2), April - 94, pp. 25 - 31

सम्बद्ध गाथाओं का पुन: प्रस्तुतीकरण -

गोम्मटसार (जीवकाण्ड)

अज्जज्जसेणगुणगण समूह संधारि अजियसेण गुरू।
भुवणगुरू जस्स गुरू सो राओ गोम्मटो जयऊ॥ 743॥

गोम्मटसार (कर्मकाण्ड)

जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण।
तह मइचक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं॥ 397॥
जम्हि गुणा विस्संता गणहरदेवादिइड्ढिपत्ताणं।
सो अजियसेणणाहो जस्स गुरू जयउ सो राओ। 966॥
गोम्मटसंगहसुत्तं गोम्मटसिहरूवरि गोम्मटजिणो य।
गोम्मटरायविणिम्मिय दक्खिणकुक्कडजिणो जयउ॥ 968॥
वज्जयणं जिणभषणं ईसिपभारं सुवण्णकलसं तु।
तिहुवणपडिमाणिक्कं जेण कयं जयउ सो राओ॥970॥
गोम्मटसुत्तल्लिहणे गोम्मटरायेण जा कया देसी।
सो राओ चिरकालं णामेण य वीरमत्तंडी॥972॥

वर्ष - 11, अंक - 4, अक्टूबर - 99, 25 - 28

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन संस्कृति का मोहन जोदड़ों : पारागढ़

■ लखन लाल खरे *

प्रत्येक बुद्धिजीवी जानता है कि राष्ट्रीय इतिहास में हड़प्पा और मोहनजोदड़ों का महत्व क्या और क्यों है। विद्वानों ने मोहन जोदड़ों का अर्थ मुर्दों का टीला बताया है।[1] मुर्दों का टीला - जहां उन्नत सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास मुर्दों की तरह टीलों में दफन है। समूचे देश में पता नहीं कितने स्थल मोहन - जोदड़ों के रूप में हैं, जो उत्खनन, अध्ययन व संरक्षण हेतु प्रतीक्षारत हैं। पारागढ़ - एक ऐसा ही स्थल है, जिसके सम्बन्ध में बुद्धिजीवी मौन हैं, पुराविद् अनभिज्ञता प्रकट करते हैं तथा जिज्ञासु अनुसंधित्सु ''गोलाकोट'' जैसी घटनाओं के कारण संदिग्ध माने जाने के भय से विवश हैं। पारागढ़ को शिवपुरी जिले का मोहन - जोदड़ों कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी, जहां कभी जैन संस्कृति अपनी चरम अवस्था में रही होगी।

पारागढ़, म. प्र. के शिवपुरी जिले की कोलारस तहसील का ऊजड़, किन्तु महत्वपूर्ण स्थल है। कोलारस से 9 कि.मी. पूर्व की ओर करधई के बीहड़ वन में स्थित भग्न किला व भूलुंठित बस्ती। किलों के भीतर सामान्यतः राजा की धार्मिक मान्यतानुसार उपासना गृह व प्रतिमाएँ निर्मित हुआ करती थीं। पारागढ़ किले के भीतर भी जैन मन्दिरों की पूरी श्रृंखला थी, जिनमें से आज भी लगभग 17 भग्न मठनुमा मंदिरों के अवशेष विद्यमान हैं। इनमें कम से कम सात - आठ खण्डित नयनाभिराम प्रतिमाएँ अब भी प्रकृति की मार झेलती खड़ी हैं। यत्र - तत्र शताधिक छोटी - बड़ी प्रतिमाएँ, चरण - चौकियाँ, तोरण द्वार व तत्सम्बन्धी मूर्तियाँ बिखरी पड़ी हैं। इससे सिद्ध होता है कि यहाँ किसी जैन मतावलम्बी राजा का शासन रहा होगा।

किंवदन्ती है कि पाड़ाशाह नामक पाड़ों के एक धर्मप्रेमी व्यवसायी का यह दृढ़ नियम था कि वह प्रतिदिन जब तक एक नवीन मूर्ति का निर्माण कार्य प्रारम्भ नहीं करवाता था, अन्न - जल ग्रहण नहीं करता था। इस तरह उसने अपने जीवन में करोड़ों छोटी - बड़ी जैन प्रतिमाओं का निर्माण करवाया और उन्हें समूचे अंचल में प्रतिष्ठित करवाया। यह शोध का विषय है कि तथाकथित पाड़ाशाह नामक व्यवसायी कहीं पाड़ागढ़ (अपभ्रंश - पारागढ़) का नरेश तो नहीं था जिसका नाम पारसचन्द या ऐसा ही कुछ हो और अपने नाम पर उसने पारसगढ़ का निर्माण कराया हो? मेरी इस मान्यता का आधार किले के भीतर जैन मठों व मूर्तियों की स्थापना है।

कोलारस के चन्द्रप्रभु दि. जैन मन्दिर में 9 वीं, 10 वीं शताब्दी की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं एवं एक अपठित शिलालेख है। लोगों की मान्यता है कि पारागढ़ पर विदेशी आक्रमणकारियों के कारण सारी बस्ती वहाँ से उजड़ गयी और कविलासपुर नामक नगर की स्थापना की। यही कविलासपुर अपभ्रंश होकर कोलारस कहलाया। बताते हैं कि चन्द्रप्रभु दि. जैन मन्दिर में स्थापित प्रतिमाएँ पारागढ़ की ही हैं। प्रश्न है, पारागढ़ से समस्त प्रतिमाएँ क्यों नहीं लाई गयीं? यह सम्भव प्रतीत नहीं होता कि कुछ मूर्तियों को लाया जाये और उनसे संख्या में अधिक प्रतिमाओं को आततायियों के कहर का ग्रास बनने छोड़ दिया जाये। फिर भी, पारागढ़ एवं कोलारस में कुछ तो सम्बन्ध है।

पारागढ़ जिले के भीतरी प्रवेश द्वार के पास ठीक बांई ओर शनि मन्दिर है जिसके

* सहायक प्राध्यापक - हिन्दी, शासकीय महाविद्यालय, कोलारस (शिवपुरी)

गर्भ गृह में तथाकथित शनिदेव की मूर्ति स्थापित है। गर्भद्वार के बाईं ओर विशाल जरायुयुक्त शिवलिंग है। मन्दिर की बाह्य मुख्य दीवार पर विभिन्न आकृतियां व प्रतिमाएँ शिल्पांकित हैं। इनमें कुछ जैन प्रतिमाएँ हैं, यक्ष - यक्षणियाँ व बेलबूटे हैं। एकमात्र बौद्ध प्रतिमा भी अंकित है, जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ बौद्ध धर्मावलम्बी भी रहे होंगे, भले ही वे अल्पसंख्यक हों। वर्ष भर में एक बार चैत्र में यहाँ 'शनीचरा' का मेला लगता है। इस एक दिवसीय मेले में आसपास के ग्रामीण श्रद्धालुओं के अतिरिक्त और कोई नहीं आता। इसी दिन मंदिर की पुताई होती है। इस तरह वर्षों से चूने की पर्तों में मूर्तियों का मूल स्वरूप ढंक गया है जो मुश्किल से जाना जाता है। यह भी विस्तृत शोध का विषय है कि शनि मन्दिर में प्रतिष्ठित प्रतिमा क्या वास्तव में शनिदेव की है अथवा अन्य ?

कोलारस तहसील में पग - पग पर जैन प्रतिमाओं का भण्डार है, पर वे सभी असंरक्षित हैं। कोलारस, कोलारस से सेसई (9 मि.मी.), राई (10 मि.मी.), कैलधार (25 कि.मी.), खतौरा (30 मि.मी.), इन्दार (36 मि.मी.), रन्नौद (45 कि.मी.), भड़ौता - रामपुर (3 कि.मी.) आदि अनेक स्थलों में पाये जाने वाले मंदिरों व प्रतिमाओं के भगनावशेष इस तथ्य के प्रदर्शनार्थ पर्याप्त साक्ष्य हैं कि यह क्षेत्र कभी जैन संस्कृति का महत्वपूर्ण संवाहक रहा होगा। यह भी निर्विवाद है कि इस अंचल में प्राप्त जैन शिल्प 8वीं से 11 - 12 वीं शताब्दी का है। इस काल में यह क्षेत्र राजपूत राजाओं द्वारा शासित रहा है। '7 वीं से 12 वीं शताब्दी तक जिन अनेक स्वतंत्र प्रांतीय राज्यों का उदय हुआ, उनके शासकों को भारतीय इतिहास में ''राजपूत युग'' कहते हैं। इन सभी राज्यों के संस्थापक प्रायः राजपूत ही थे।'[2]

पारागढ़ दुर्ग के बाहर दो लावारिस शिलाखण्ड पड़े हैं, जिन पर उर्दू में कुछ उत्कीर्ण है। इससे मुस्लिम आकम्रणकारियों का यहाँ आना तो पता चलता है, पर यह सिद्ध नहीं होता कि यह उनका धार्मिक या सांस्कृतिक केन्द्र होगा। निविढ़ अन्धकार में प्रकाश - रश्मि के रूप में वह एकमात्र अस्पष्ट, अपठित व खण्डित शिलालेख है जो एक खण्डित जैन तीर्थंकर की चरण - चौकी पर उत्कीर्ण है। सम्भव है इस शिलालेख व कोलारस के चन्द्रप्रभु दि. जैन मन्दिर में लगे शिलालेख का परस्पर सम्बन्ध हो। निश्चित ही इन दोनों शिलालेखों के उद्घाटन से पारागढ़ की धूल धूसरित जैन सभ्यता के सम्बन्ध में नवीन तथ्य प्रकाशित हो सकेंगे।

मैं आह्वान करता हूँ पुराविदों का, इतिहासज्ञों का, शोधार्थियों का एवं जैन समाज के सम्माननीय धर्मप्रेमी श्रीमंतों का, कि पारागढ़ की विलुप्त जैन संस्कृति को प्रकाश में लाने हेतु कटिबद्धता प्रदर्शित करें। यहाँ की जैन शिल्प सम्पदा का संरक्षण सम्भव न हो तो कम से कम उस एकमात्र शिलालेख के संरक्षण की दिशा में ही प्रयत्न किया जाये जो इस स्थल की गौरवगाथा सुनाने आज तक जीवित है। निराशा की स्थिति में यही मानसिकता निर्मित होती है - 'वीरविहीन मही मैं जानी'।

सन्दर्भ –

1. माथुर, एस.के. - प्राचीन भारत का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन पटना, पृ. 33। मोहनजोदड़ों सिंधी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है मुर्दों का टीला।

2. वही, पृ. 173

प्राप्त – 22.3.99

पारागढ़ से प्राप्त जैन मूर्तियों के भग्नावशेष

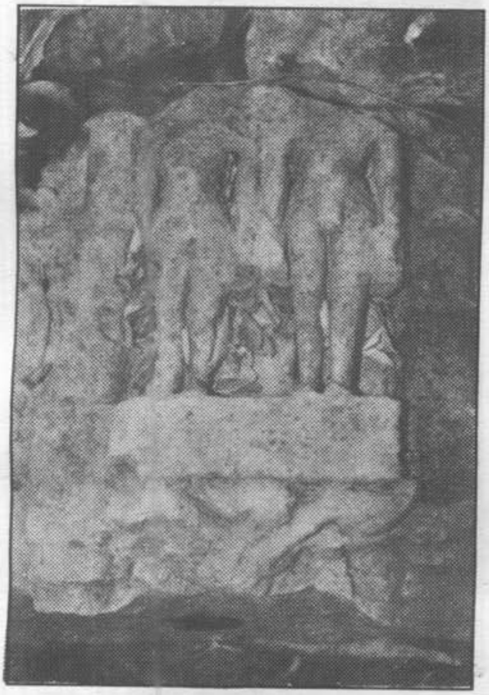

पारागढ़ से प्राप्त मूर्तियों के भग्नावशेष

पारागढ़ (तहसील कोलारस जिला शिवपुरी) स्थित
सिर व हाथ विहीन जैन प्रतिमा

पारागढ़ (तहसील कोलारस जिला शिवपुरी) स्थित
सिर विहीन खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमा

पारागढ़ (तहसील कोलारस जिला शिवपुरी) स्थित जैन प्रतिमा की चौकी पर
अंकित शिलालेख

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

वर्ष - 11, अंक - 4, अक्टूबर - 99, 29 - 31

क्या है प्राचीन उदयगिरि - खंडगिरि गुफाओं का भविष्य?

■ गौरव छाबड़ा *

खण्डगिरि उदयगिरि दिगम्बर जैन परम्परा का प्राचीन सिद्ध क्षेत्र है। यह स्थान भुवनेश्वर रेल्वे स्टेशन से 8 कि.मी. की दूरी पर है। इस स्थान से जसरथ के 500 पुत्रों ने निर्वाण प्राप्त किया था। यहाँ पर करीबन 2000 वर्षों से भी अधिक प्राचीन शिलालेख, प्रतिमायें और मुनियों के ध्यान - अध्ययन करने योग्य कई मनोज्ञ गुफाएँ है।

संक्षिप्त इतिहास -

भारतवर्ष के इतिहास में कलिंग का स्थान अत्यंत ऊँचा और महत्वपूर्ण है। प्राचीन कलिंग के इतिहास में जैनधर्मी मंहा मेघवाहन सम्राट का शासनकाल एक स्वर्णिम काल है। खारवेल का जन्म एक जैन परिवार में हुआ था। अत: जैन धर्म का गौरववर्धन उनके लिए स्वाभाविक कर्त्तव्य था।

कलिंग का प्रथम ज्ञात संगठित धर्म, जैन धर्म था। भगवान महावीर ने अपने देशनाकाल में कलिंग की राजधानी तोशाली में धर्मोपदेश किया था। मगध राजा नन्द ने तोशाली से ही ऋषभ जिन की प्रतिमा का हरण कर उसे मगध में स्थापित किया था। 300 वर्ष पश्चात इसी प्रतिमा को कलिंग सम्राट खारवेल ने मगध के तत्कालीन राजा पुष्यमित्र से प्राप्त कर राष्ट्रीय समारोह पूर्वक पुन: तोशाली में स्थापित किया। सम्राट खारवेल का समय ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी है।

पर्वत पर गुफाएं व मंदिर -

जैन धर्मशाला से लगभग 50 गज चलने पर बांई सीढियों पर चढ़कर खण्डगिरि पर्वत की चोटी पर छोटे बड़े 5 मंदिर बनें हैं। ये सभी मंदिर आधुनिक हैं। जनश्रुति के अनुसार इन मंदिरों का निर्माण 19 वीं शताब्दी में कटक के मंजू चौधरी ने करवाया था। खारवेल के राजत्वकाल में उदयगिरि खंडगिरि में कितनी गुफाएं थी, यह बताने के लिए कोई विश्वसनीय तथ्य नहीं हैं। यह निश्चित रूप से सत्य है कि मनुष्य और प्रकृति के हाथों कई गुफाएं ध्वंस हो गई हैं। वर्तमान में उदयगिरि में 18 और खंडगिरि पर 15 गुफाएं हैं। यहां एक बात की और विशेष रूप से ध्यान जाता है कि यहाँ गुफाओं में जितनी जैन मूर्तियाँ प्राप्त होती है, वे सभी दिगम्बर परम्परा की है।

उदयगिरि पर्वत का गुफा समूह -

इस पर्वत का प्राचीन नाम कुमारी पर्वत था। यहाँ की गुफाओं में सबसे महत्वपूर्ण हाथी गुफा है। इस प्राकृतिक गुफा की अंदरूनी छत पर महाराजा खारवेल की एक सुदीर्घ प्रस्तर लिपि खुदी है। काफी प्रयासों के बाद इस 17 पंक्तियों के शिलालेख को पढ़ा जा सकता है। शिलालेख का प्रारंभ अरहंतों तथा सिद्धों को नमस्कार के द्वारा हुआ है। आगे लेख में खारवेल के कुमार काल, विद्या अध्ययन, युवराज पद, मगध विजय, कलिंग जिन की वापसी आदि बातों का वर्णन है। जैन इतिहास की दृष्टि से यह लेख अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त उदयगिरि पर राणी गुफा, छोटा हाथी गुफा, बाजाघर गुफा, अलकापुरी

* 10, फारेस्ट कालोनी, लाल कोठी, जयपुर (राज.)

गुफा, गणेश गुफा, पातालपुरी गुफा आदि हैं। छोटा हाथीगुफा के सम्मुख भाग पर तीन हाथियों को पत्र पुष्प लेकर धीरे-धीरे आते दिखाया गया है। मंचपुरी गुफा के निचले खण्ड में कलिंगजिन की प्रतिमा की प्रतिष्ठा का चित्र उत्कीर्ण है।

खण्डगिरि पर्वत का गुफा समूह -

इस पर्वत पर मुख्य गुफाएं है - ततोवा गुफा, अनंत गुफा, ध्यान गुफा, नवमुनि गुफा, बाराभुजी गुफा, त्रिशूल गुफा आदि। खण्डगिरि की दोनों ततोवा गुफाओं के तोरणों पर शुक पक्षी उत्कीर्णित हुए है। संभवत: इसी कारण ये गुफाएं ततोवा नाम से संबोधित की गई। ध्यान गुफा को ध्यान घर भी कहा जाता है। नवमुनि गुफा के अंदर नौ तीर्थंकरों की प्रतिमायें है। इसलिए यह नवमुनि गुफा कहलाती है। प्रत्येक प्रतिमा के ठीक नीचे इनकी शासन देवियों की प्रतिमाऐं है। बाराभुजी गुफा के बरामदे की दीवार के दोनों ओर बारह हाथवाली 2 जैन शासन देवियों की मूर्तियाँ उत्कीर्णित हुई हैं। दाहिनी ओर तीर्थंकर अजितनाथ की शासनदेवी रोहिणी है तथा बांई ओर तीर्थंकर आदिनाथ की शासन देवी चक्रेश्वरी है। इस गुफा में चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमायें है। 23 प्रतिमायें योगासन में है तथा पार्श्वनाथ की नग्न दिगम्बर खड्गासन प्रतिमा है। प्रत्येक तीर्थंकर के नीचे उनके लाँछन (चिन्ह) तथा उसके नीचे उनकी यक्षिणियों की प्रतिमाएँ है। त्रिशूल गुफा का निर्माण जैन अर्हतों के निवास हेतु किया गया था। बाद में यहां चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमायें बनी।

वर्तमान स्थिति -

वर्तमान में खण्डगिरि - उदयगिरि क्षेत्र के पर्वत तथा गुफाएँ भारतीय पुरातत्व विभाग के अधीनस्थ है। परन्तु खण्डगिरि के शीर्ष पर स्थित 5 आर्वाचीन जिनालय श्री बंगाल, बिहार, उड़ीसा तीर्थक्षेत्र कमेटी के आधीन है। अब लगने लगा है कि लगभग 2200 वर्ष प्राचीन यह अद्‌भुत विरासत, यह तीर्थ अपनी अंतिम सांसें ले रहा है। और शायद कुछ समय बाद यह क्षेत्र नष्ट भी हो जाये तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। क्षेत्र की वर्तमान स्थिति इसका सशक्त प्रमाण है।

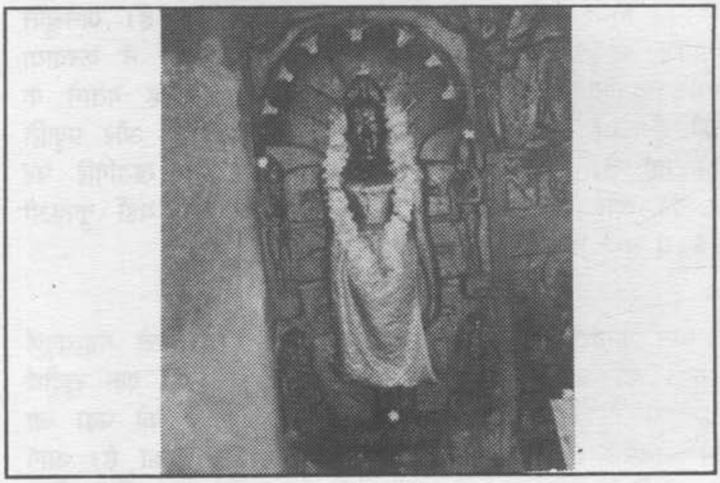

यहाँ में प्रस्तुत करना चाहूँगा इस तीर्थ क्षेत्र की आँखों देखी वर्तमान स्थिति। उपरोक्त विवरण में जिस वाराभुजी गुफा का वर्णन किया था, वह अब पूर्णतया हिन्दू पुजारियों के अवैध कब्जे में है। इस गुफा की जालियां तोड़ दी गई हैं। गुफा में चौबीस तीर्थंकरों तथा उनकी यक्षिणियों की प्रतिमायें है, जिन पर काला पेंट पोत दिया गया है। इसी गुफा से भगवान पार्श्वनाथ की लगभग 4 फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमा है। जिसे कपडे पहना दिये गए है। और नागदेवता के रूप में पूजा जा रहा है। इस मंदिर के ठींक सामने एक नये मंदिर का निर्माण कर शिवलिंग स्थापित कर दिया गया है। भुवनेश्वर के आस-पास

के गाँव के हिन्दू लोगों की हर महीने यहाँ मीटिंग होती है। जिसमें जैन धर्म का खुले आम विरोध किया जाता है। इस गुफा को ये लोग दुर्गा मंदिर कहते है। इस स्थान पर प्रतिदिन 20 - 25 बसें / गाड़ियाँ आती है। जिससे यहां के पुजारियों को प्रतिमाह चढ़ावें के रूप में 40 - 45 हजार रूपयों की कमाई हो रही है। साथ ही ये लोग इस स्थान को हिन्दुओं का बताकर दुष्प्रचारित कर रहे हैं। यह गुफा तथा अन्य सभी गुफायें भारतीय पुरातत्व विभाग के अन्तर्गत आती है। इसके पश्चात भी इन पर अवैध कब्जा किया जा चुका है। और यह सब सिर्फ पिछले 4 - 5 सालों में हुआ है। इस गुफा के बराबर में स्थित नवमुनि गुफा तथा त्रिशूल गुफा की जालियां टूटी पड़ी हैं। जिन पर कभी भी कब्जा हो सकता है। यहां के हिन्दू पुजारी मांसाहारी है तथा पर्वत की पावन भूमि पर शराब पीना आदि का व्यसन करते हैं।

दूसरी तरफ उदयगिरि पर्वत के अहाते में ही हिन्दुओं का पादुका आश्रम चल रहा है। इस स्थान पर भी हमेशा हिन्दू पुजारियों का जमावड़ा रहता है। विश्व प्रसिद्ध हाथी गुफा शिलालेख अपनी दुर्दशा पर रो रहा है। बरसात और धूप तथा मानव कृत्यों से यह असुरक्षित है।

समाधान -

आज समाज के सामने एक महत्वपूर्ण प्रश्न खडा है। नवीन मंदिरों एवं जिनालयों के निर्माण तथा पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं के अलावा समाज के पास कोई गतिविधियाँ नहीं है। क्या हम हमारे 2500 वर्ष प्राचीन इतिहास को बचा पा रहे है? वैसे भी दिगम्बर समाज के पास प्राचीन सामग्री समाप्त होती जा रही है। कहीं श्वेताम्बर तो कहीं हिन्दुओं के अवैध कब्जों ने दिगम्बर समाज को आहत किया हुआ है।

ऐसे में आवश्यकता है निर्णय करने की। अगर भारतीय पुरातत्व विभाग से इस प्राचीन स्मारक की रक्षा नहीं हो रही है, तो समाज को यह क्षेत्र अपने हाथ में ले लेना चाहिये। उड़ीसा सरकार वर्ष 1999 - 2000 को खारवेल वर्ष के रूप में मना रही है। अगर खारवेल वर्ष में भी यहां की सुरक्षा की बात नहीं उठाई गई तो खारवेल वर्ष मनाने का औचित्य क्या है? महान दिगम्बर सम्राट खारवेल की आत्मा भी आज रो रही होगी, जब उसका निर्माण मिट्टी में मिल रहा है। हमारे पास कुछ ही स्थान ऐसे हैं जो कि विदेशी पर्यटकों तथा विद्वानों को भी आकर्षित करते है। उनमें से एक स्थान यह भी है। दिगम्बर संस्कृति के प्रचार - प्रसार हेतु इस स्थान को बचाना अत्यंत आवश्यक है।

मैं अनुरोध करूंगा सभी साधु संतों से, समाज के नेतृत्व वर्ग से, तथा समाज से कि अगर दिगम्बर धर्म व संस्कृति को बचाना है, तो इस स्थान को बचाइये। वरना कुछ समय बाद अपना कहने के लिए समाज के पास कुछ नहीं बचेगा। समाज से निवेदन है कि अगर अपनी संस्कृति पर गर्व है तो उदयगिरि - खंडगिरि सिद्ध क्षेत्र की यात्रा अवश्य करें तथा हर सार्वजनिक सभा में इस क्षेत्र की बात उठाएँ। समाज के नेतृत्व वर्ग से उत्तर तथा उचित कार्यवाही की प्रतीक्षा में एक जिनेन्द्र भक्त, गुरू भक्त, तीर्थ भक्त....।

प्राप्त - 11.8.99

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर का प्रकल्प

सन्दर्भ ग्रन्थालय

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दि महोत्सव वर्ष के सन्दर्भ में 1987 में स्थापित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने एक महत्वपूर्ण प्रकल्प के रूप में भारतीय विद्याओं, विशेषत: जैन विद्याओं, के अध्येताओं की सुविधा हेतु देश के मध्य में अवस्थित इन्दौर नगर में एक सर्वांगपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थालय की स्थापना का निश्चय किया।

हमारी योजना है कि आधुनिक रीति से दाशमिक पद्धति से वर्गीकृत किये गये इस पुस्तकालय में जैन विद्या के किसी भी क्षेत्र में कार्य करने वाले अध्येताओं को सभी सम्बद्ध ग्रन्थ / शोध पत्र एक ही स्थल पर उपलब्ध हो जायें। हम यहाँ जैन विद्याओं से सम्बद्ध विभिन्न विषयों पर होने वाली शोध के सन्दर्भ में समस्त सूचनाएँ अद्यतन उपलब्ध कराना चाहते हैं। इससे जैन विद्याओं के शोध में रूचि रखने वालों को प्रथम चरण में ही हतोत्साहित होने एवं पुनरावृत्ति को रोका जा सकेगा।

केवल इतना ही नहीं, हमारी योजना दुर्लभ पांडुलिपियों की खोज, मूल अथवा उसकी छाया प्रतियों / माइक्रो फिल्मों के संकलन की भी है। इन विचारों को मूर्तरूप देने हेतु दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर पर नवीन पुस्तकालय भवन का निर्माण किया गया है। 30 सितम्बर 1999 तक पुस्तकालय में 6600 महत्वपूर्ण ग्रन्थ एवं 1000 पांडुलिपियों का संकलन हो चुका है। जिसमें अनेक दुर्लभ ग्रन्थों की फोटो प्रतियाँ सम्मिलित हैं ही। अब उपलब्ध पुस्तकों की समस्त जानकारी कम्प्यूटर पर भी उपलब्ध है। फलत: किसी भी पुस्तक को क्षण मात्र में ही प्राप्त किया जा सकता है। हमारे पुस्तकालय में लगभग 160 पत्र - पत्रिकाएँ भी नियमित रूप से आती हैं।

आपसे अनुरोध है कि —

संस्थाओं से : 1. अपनी संस्था के प्रकाशनों की 1 - 1 प्रति पुस्तकालय को प्रेषित करें।

लेखकों से : 2. अपनी कृतियों (पुस्तकों / लेखों) की सूची प्रेषित करें, जिससे उनको पुस्तकालय में उपलब्ध किया जा सके।

3. जैन विद्या के क्षेत्र में होने वाली नवीनतम शोधों की सूचनाएँ प्रेषित करें।

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम परिसर में ही अमर ग्रन्थालय के अन्तर्गत पुस्तक विक्रय केन्द्र की स्थापना की गई है। सन्दर्भ ग्रन्थालय में प्राप्त होने वाली कृतियों का प्रकाशकों के अनुरोध पर बिक्री केन्द्र पर बिक्री की जाने वाली पुस्तकों की नमूना प्रति के रूप में उपयोग किया जा सकेगा। आवश्यकतानुसार नमूना प्रति के आधार पर अधिक प्रतियों के आर्डर दिये जायेंगे।

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर के सहयोग से संचालित प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण की परियोजना भी यहीं संचालित होने के कारण पाठकों को बहुत सी सूचनाएँ यहाँ सहज उपलब्ध हैं।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

वर्ष - 11, अंक - 4, अक्टूबर 99, 33 - 36

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

शक तथा सातवाहन सम्बन्ध

■ नेमचन्द्र डोणगांवकर *

यह सम्बन्ध एक कुल का होगा। इसके लिये (1) तिलोयपण्णत्ति, (2) अन्य जिनागम, (3) हिन्दू पुराण, (4) शिलालेख, (5) नाणीलेख तथा (6) विवाह संबंध का विवेचन करूंगा।

1. तिलोयपण्णत्ति (अ - 4)

वीर जिणे सिद्ध - गदे, चउसद इगिसट्ठि वास परिमाणे।
कालम्मि अदिक्कंते, उप्पण्णो एत्थ सकराओ॥ 1496॥

अर्थ - वीर नि. 461 वर्ष का काल अतिक्रांत होने पर यह शकराज हुआ।

अहवा वीरे सिद्धे, सदरस्स चउकम्मि सगगये गहिये।
पणसीदिम्मि अतीदे, पणमासे सगणिओ जादो॥ 1497॥

अर्थ - अथवा (पूर्व शकराज का) स्वर्गवास होने पर वीर नि. 485 वर्ष + 5 मास के बाद शकराज हुआ।

चौद्दस सगरस्स सगगय ते नउ दी वास कालविच्छेदे।
वीरेसर सिद्धिदो उप्पण्णो सगणिओ अहवा॥ 1498॥

अर्थ - अथवा चौदहवें शकराज के स्वर्गवास होने से अर्थात् उसके राज्य के 9 वर्ष काल बीतने पर (461 + 9) वीर नि. 470 में एक शकराज हुआ।

टीप - इसको लिपिकार से ऐसा लिखा गया -

1. **अहवा वीरे सिद्धे, सहस्स णवकम्मि सग सये ब्यहिये।....9785 + 5 मास॥ 1497॥**

2. **चौद्दस सहस्स सगसय ....14793 वर्ष॥1498॥**

प्रश्न : यह तो विक्रम संवत् आया। विक्रम के बारे में ऐसा कथन है कि उसकी 18 वें वर्ष में मृत्यु हुई थी। सो कैसे ?

उत्तर : दोनों कथन बराबर हैं। उसका जन्म वीर नि. सं. 452 में ही हुआ था। किन्तु जैन मान्यताओं के अनुसार संज्ञान 8 वर्ष बीतने पर याने 9 वें वर्ष में होने से अर्थात् वीर नि. सं. 461 में वह राज्यारूढ़ हुआ था और वीर नि. सं. 470 में उसका देहान्त भी ठीक है। यद्यपि यह विक्रम संवत् के नाम से प्रसिद्ध है, तथापि इसे ग्रंथकार ने शकनृप ही लिखा है। इससे दोनों का कुल एक ही होगा।

णिव्वाणे वीरजिणे, छव्वास सदेसु पंच वरिसेसु।
पण मासेसु गदेसु, संजादो सगणिओ अहवा॥ 1499॥

अर्थ - अथवा, वीर नि. 605 वर्ष 5 मास बीतने पर शकराज उत्पन्न हुआ।

प्रश्न : गाथा नं. 1496 से 1499 तक भिन्न - भिन्न काल क्यों दिया ?

उत्तर : '**रायंतरेसु एसा जुत्ति सव्वेसु पतेक्कं॥ 1502॥**

अर्थ - यह कथन प्रत्येक भिन्न - भिन्न राजाओं की अपेक्षा हुआ है।

2. अन्य जिनागम

2.1 किन्तु अंतिम काल शक संवत् के नाम से रूढ़ होने से उसकी पुष्टि अन्य ग्रंथकारों

* देउलगांव राजा - 443204 (बुलढाणा), महाराष्ट्र।

ने की। यथा (1) हरिवंशपुराण (शके 705) - अ. 60

वर्षाणां षट्शतींत्यक्त्वा, पंचाग्रं मास पंचकं।
मुक्तिं गते महावीरे, शक राजस्ततोऽभवत्॥ 551॥

2.2 धवला (शके 738) उद्धृत -

पंच य मासा पंच य, वासा छच्चेव होंति वाससया।
सगकालेण य सहिया, थावेयव्वो तदो रासी॥ 41॥ (पु. 9 - 132)

प्रश्न : कौनसी राशी मिलना चाहिये ?

उत्तर : **गुत्ति पयत्थ भयाइं चोद्दसरयणाइ समइकंताइं।**
परिणिव्वुदे जिणिंदे, तो रज्जं सगणरींदस्स॥42॥ (पु. 9 - पृ. 132)

अर्थ - शक नरेन्द्र के वीर नि. 607 वर्ष + 5 मास में 394 वर्ष + 7 मास (मिलाना)।

ना केई एवं परूवेंति - सत्ता सहस्साणु वसय पंच (5) णउ (9) दि (3) स पंच मासाय।
अइक्कंता वासाणं, जइया तइया सगुप्पत्ति॥ 43॥ (पु. 9 - 133) *

अर्थ - कोई आचार्य इस प्रकार कहते हैं कि 395 वर्ष में शक नृप के 5 मास वाले 605 वर्ष मिलने पर एक सहस्र की जोड़ संख्या आती है। (यह कल्की काल है)

टीप - यह नं. 42 व 43 की गाथा भ्रष्ट रूप से आ. वीरसेन को मिली थी। यथा -

42 - मुत्ति पयत्थ भयाइं, चौद्दस रयणाइ समइकं ताइं।......॥ 14793

43 - सत्त सहस्स ण - व सद पंचाणइ समइकं ताइं।.......॥ 7995

इनको ऐसा ही सार्थ उद्धृत कर आ. वीरसेन ने लिखा -

एदेसु तिसु एक्केण होदव्वं। ण तिण्णमुवदेसाणं सच्चत्तं॥
अण्णोण्णविरोहादो। तदो जाणीय वत्तव्वम्॥

अर्थ - इन तीन कथनों में से एक ही सच्चा होगा। तीनों कथनों का ठीक होना योग्य नहीं है, क्योंकि उनमें परस्पर विरोध है। अत: उनको ठीक जानकर ही वक्तव्य करें।

2.3 मूल गाथा 42 आदि का समर्थन त्रिलोकसार (10 वीं सदी) से होता है। यथा -

पण छ सय वस्सं पणमास जुदं गमीय वीर णिव्वुइदो।
सगराजो तो कक्की, चदुणवतिय महिय सग मासं॥850॥

इसकी टीका में माधवचन्द्र त्रैविद्य लिखते हैं कि - **'श्री वीर निवृते: सकाशात पंचोत्तर षट् शत (605) वर्षाणि पंच मास युतानि गत्वा विक्रमांक शक राजो जायते। तत: उपरि चतुर्नवत्युत्तर त्रि (394) वर्षाणि सप्तमासादिकानि गत्वा पश्चात्कल्की जायते।'**

2.4 इसके हिन्दी अनुवाद में पं. टोडरमलजी लिखते हैं - **'श्री वीरनाथ चौबीसवाँ तीर्थंकर का मोक्ष होने के पीछे छह सो पाँच वर्ष पाँच मास सहीत गये विक्रम नाम का राजा हो है ....।**

2.5 पं. फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री - **'खोज करने पर जान पड़ता है कि अनेक जैन लेखकों ने प्राचीन काल से शक काल के साथ भी विक्रम का नाम जोड़ रखा है।**

* तिलोयपण्णत्ती एवं धवला की गाथा के मूलरूप हमें स्व. शांतिकुमारजी हवली ने बताये हैं। — लेखक

यथा - अकलंक चरित्र - (शक 700)

विक्रमार्क शकाब्दीय शतसप्त प्रभाजुषि।
कालेऽकलंकयतिनो बौद्धैर्वादो महानभूत्॥

2.6 धवल प्रशस्ति - (शक 738) - **अठतिसम्मि सतसये विक्कमरायंकिये सु सगनामे।**

2.7 पंच संग्रह प्रशस्ति - (वि. सं. 1073) - **'त्रिसप्तत्याधिकेष्वानां सहस्रे शक विद्विष:।....**

टीप - इस लेख से ऐसा लगता है कि शक और सातवाहनों में आगे परस्पर विरोध हो गया था।

3. हिन्दू पुराण

(क) एतरेय ब्राह्मण - सातवाहन की गणना पुण्ड्र, शबर, पुलिंद आदि नीच जाति में की है।

(ख) वायु पुराण - 'शक मानोऽभवद्राजा महिषाणांमहिपति:।' अर्थ - मान नाम का शकराजा महिषक का अधिपति हुआ।

गुंटुपल्ली अभिलेख (प. गुप्त न. 13) में लिखा है कि - **'महरजस कलिंगाधिपति, मंहिषकाधिपतिस, महालेखवाहनस सिरिसदस ....।'** इससे कलिंगाधिपति महामेघवाहन, महिषकाधिपति शक तथा श्री सातकर्णि, ये एक ही कुल के थे, इसकी पुष्टि होती है।

टीप - हिन्दू पुराणों में यह भी देखना जरूरी है कि शक तथा सातवाहन राजाओं की सूची एकत्र ही दी है या अलग तथा शक नृप मान का उल्लेख जो वायु पुराण में आया है, वह कौन से वंश में है।

धवल पुस्तक-1, पृ. 24 पर पं. सिद्धान्तशास्त्री फूलचन्दजी लिखते हैं कि - 'हिन्दू पुराणों में अनेक स्थानों पर दो राजवंशों का काल एक ही वंश के साथ दे दिया है।'

4. शिलालेख

(क) डॉ. मिराशी द्वारा सम्पादित 'सा. आंधि प.अ. यांचे को लेखा' , इस किताब के क्र. 30 व 31 में 'सकसेनस' (स क स + इ न स) ऐसी संधि पायी जाती है। तथा क्र. 40 - **'सिधं। रञो शहरातस नहपानस जामातु दिनीक पुत्रस, शकस उसवादातस** ....।' ऐसा उल्लेख मिलता है।

प्रश्न - डॉ. मिराशी तो प्राकृत में संधि मानते ही नहीं थे, तो क्या आपको शिलालेखों में और कहीं संधिपद दिखे हैं?

उत्तर - पुलुमावि के वर्ष 19 वाले लेख में कुकुरापरांत, धमोपाजित, खमाहिंसा (समा + अहिंसा), णियमोपवास आदि संधिपद पाये जाते हैं।

(ख) डॉ. वि. भि. कोलते संपादित 'महाराष्ट्रील कांही ताम्रपट व शिलालेख' के पृष्ठ 154 - **'ए सव शक वर्ष मंमानिसी विक्रम वर्ष में दु...........।'** (इन सभी को शक वर्ष मानने पर भी विक्रम वर्ष मानना चाहिये।)

पृष्ठ 307 - **'कवर्ष कालातीत संवत्सरेषु ....सालिवाह 1299।'** पृष्ठ 387 - 'शालिवाहन शके 1722 ....।' आदि उल्लेख है। शालिवाहन शक का उल्लेख तो दक्षिण भारत के अनेक जैन शिलालेखों में है, जो अभी रूढ़ ही है। **'शकनृप कालातीत'** यह रूप **'मृते विक्रमराजनि'** का ही जान पड़ता है। क्योंकि वह एक ही अर्थ का बोधक है।

(ग) डॉ. परमेश्वरीलाल गुप्त संपादित 'प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, भाग - 1' में पृ. 147 में आया कि - **'कस्स गुषणवंझसंवर्धक .....3.....सत्रपस.....10 ...... समं सदभवतु.....11.....12.....।'**

टीप – डॉ. मिराशी ने तो महरात समपोको कुषाणवंशीय संवत् को चलाने वाली माना है। अतः वह संवत् भी B.C. ही जान पड़ता है।

पृष्ठ 199 2र शक नृप रुद्रदामन का लेख आया है। उसके पंक्ति 12 में - **'वीरशब्दजा(तो)त्सेकाविधेयानां यौधेयानां .... दक्षिणापथपतेः सप्तकर्णीर्द्विरपि निर्व्याजमवजीत्य संबंधाविदूरतया अनुसादनात् ....।'** यह संबंध एक कुटुम्ब का भी हो सकता है। डॉ. विद्या दहेजा 'संबंधाविदूर' का तात्पर्य जामाता से मानने को तैयार नहीं है। इसी लेख में शकों को यौधेम भी कहा है। लेख नं. 42 के टिप्पण में डॉ. परमेश्वरीलाल गुप्त लिखते हैं कि - 'ये सारे कार्य ऐसे हैं जो ब्राह्मण धर्मावलम्बी ही कर सकते हैं।'

लेख क्र. 47 में आये कुल संवत् के लिये डा. गुप्त ने लिखा है - 'मालव संवत् को ही कृत संवत् कहते हैं। विक्रम संवत् ही मालव संवत् था। अतः वह विक्रम संवत् का ही मूल नाम है। .... किन्तु, उसे कृत क्यों कहते हैं? इसका समुचित समाधान अभी तक नहीं हो पाया है।

टीप – मालव संवत् जनताकृत होने से ही इसे कृत संवत् कहा होगा।

5. नाणी लेख

(क) सराक जि. अकोला (महाराष्ट्र) तथा पेंडा बंकूर (आंध्र) में मिले कुछ सिक्कों पर 'सक सदस', 'सक सातकणिस', 'रजो सिरि सक सातकणिस' तथा

(ख) 'रजो सिरि सगमाण महसस' वा 'रजो सग मान महसस' या कोंडापुर में मिले कुछ सिक्कों पर 'सगमान चुटुकुलस' वा 'महासेनापतिस महरजसुतस सगमान चुटुकुलस' जैसे लेख मिले हैं।

इस सिक्कों की दूसरी बाजू पर उज्जैनी चिन्ह भी है। या कों का चिन्ह - हाथी, टेकड़ी, नदी, बार भी नाये जाते हैं। ऐसे ही अकोल में प्राप्त कुछ सिक्कों पर इन शक चिन्हों के साथ 'सिरि सदवहन', 'रजो जिसरिसदवहनस' का लेख भी मिला है। और डॉ. वि. भा. कालते इसका काल भी B.C. (इ.स.पूर्व) 2 रा शतक मानते हैं। (म.ता.शि. 209)

6. विवाह संबंध

(क) विक्रमादित्य कादंबरी में लिखा है कि - 'हनेंदु देवी इस शक कन्या का विवाह विक्रम (सातकर्णी) से हुआ था।'

(ख) डॉ. मिराशी शिलालेख कृ. 25 के अनुसार लिखते हैं कि - 'वाशिठीपुत्र सातकर्णि की पट्टराणी कार्दमक शक कन्या थी।'

इस विवेचन से सिद्ध होता है कि शक तथा सातवाहन का कुल एक ही है।

प्राप्त – 29.6.98

वर्ष - 11, अंक - 4, अक्टूबर - 99, 37 - 39

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अनेकांत की दृष्टि और पर्यावरण की सृष्टि

■ उदयचंद्र जैन *

अनेकांत की दृष्टि सह - अस्तित्व, समभाव, समन्वय एवं प्राणी मात्र के संरक्षण के सिद्धांत का प्रतिपादन करती है। विश्व के क्षितिज पर अनेक राष्ट्र है, राष्ट्र के समूह का नाम विश्व है। सामान्य की दृष्टि से इनमें एकत्व का समावेश है और विभिन्न राष्ट्रों की अपेक्षा अनेकत्व समाया हुआ है। प्रत्येक राष्ट्र का एक ही उद्देश्य होता है, उसका एक ही विचार होता है फिर भी उसमें भेद - अभेद, संघर्ष, समन्वय, धार्मिकता, अधार्मिकता, भक्षता - अभक्षता आदि सभी अनेकांत की दृष्टि को इंगित करते हैं। सभी एक दूसरे को समाप्त करना चाहते हैं। ऐसा ही नहीं, अपितु सभी एक दूसरे को जीवनदान भी देना चाहते हैं क्योंकि सभी अपने - अपने गुणों के कारण रहते हैं, संरक्षण प्राप्त करते हैं। इनके इस अधिकार को छीनना उचित नहीं है। यह राष्ट्र धर्म भी नहीं है। यदि ऐसा किया जाता है तो किसी भी राष्ट्र का न्याय या सत्य प्रमाणित नहीं कहा जाएगा। यदि कोई राष्ट्र किसी का घातक बनता है तो उसका भी कोई दूसरा घातक हो सकता है।

अनेकांत की दृष्टि में अहिंसात्मक उपाय है न्याय, तर्क एवं सत्य का सिद्धान्त। इसमें प्राणीमात्र के लिए संरक्षण है। यदि यह कहा जाए कि अनेकान्त की दृष्टि में विश्व विकास एवं राष्ट्रीय उन्नति का सर्वश्रेष्ठ आदर्श छिपा हुआ है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसमें मानवीय मूल्यों की स्थापना पर विशेष बल दिया गया है, इसकी विचारधारा में प्राणीमात्र के प्रति समभाव का दृष्टिकोण हैं। यह एक ऐसा विचारात्मक गुरु है, जो सबकी सोचता है, सबकी सुनता है, गुत्थी सुलझाता है, ग्रंथि खोलता है, वैमनस्य तोड़ता है और एक दूसरे को जोड़ता है। यही इसकी प्रमुख सामाजिक भूमिका है तथा पर्यावरण की सृष्टि के लिए दिशा निर्देश है। इसकी दृष्टि में इस प्रकार की सृष्टि है -

'सव्वं जगं तू समयाणुपेही, पियमप्पियं कस्स वि नो करेज्जा' (सूत्रकृतांग 1/10/6)

अर्थात् संपूर्ण विश्व के प्रति समभाव की दृष्टि है, वह न किसी का प्रिय करता है एवं न किसी का अप्रिय करता है।

अनेकांत क्या है? इस पर विविध प्रकार से चिंतन किया गया। दार्शनिकों ने अनेक धर्मों से युक्त वस्तु का विवेचन करके यह सिद्ध किया कि अनेकांत तत - अतत्, एक - अनेक, सत् - असत्, नित्य - अनित्य, सामान्य - विशेष, भाज्य - विभाज्य, भेद - अभेद, भाजन - विभाजन, अवयव - अवयवी आदि रूप है। यह दो विरोधी शक्तियों का उद्घाटन करता है। अनेकांत के स्वरूप से यह बात सिद्ध हो जाती है -

'अनेके अंता धर्मा:, सामान्य – विशेष – पर्याया गुणा यस्येति सिद्धोऽनेकान्त:' (न्याय दीपिका 3/76)

अर्थात् अनेकान्त में सामान्य, विशेष, पर्याय या गुणरूप, अनेक अंत या धर्म पाए जाते हैं। अनेकान्त में एक ही समय में एक ही स्थान पर प्रतिपक्षी अनेक धर्मों की प्ररूपणा की जाती है। जो अविरूद्ध होती है, उसी वस्तु का वचन - व्यवहार से भी अनेक रूपों में प्रतिपादन किया जाता है क्योंकि एक ही वस्तु में युगपदवृत्ति पाई जाती है। अर्थात्

* रीडर - प्राकृत एवं जैन विद्या विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया वि.वि., उदयपुर। निवास - पिऊ कुंज, अरविन्द नगर, उदयपुर (राज.)

वस्तु में एक ही समय अनेक विरोधी धर्मों, गुणों, स्वभावों एवं पर्यायों का समावेश हो जाता है। जिससे वह वस्तु का अस्तित्व सिद्ध कर सकता है। एक की प्रमुखता से दूसरे की गौणता एक के भाव या स्वभाव से दूसरे के विभाव का बोध भी हो जाता है। जब तक वस्तु के एक स्वरूप की अपेक्षा दूसरे की उपस्थिति नहीं होगी तब तक वस्तु के स्वरूप का प्रतिपादन नहीं हो सकता। वस्तु के अस्तित्व की सिद्धि भी नहीं हो सकती, हमारा लौकिक व्यवहार, सामाजिक विकार, उसकी गतिविधियाँ आदि परस्पर के संबंधों पर टिकी हुई है। इसी तरह के दृष्टिकोण से पर्यावरण की सृष्टि को भी बल मिला हुआ है।

पर्यावरण की सृष्टि कैसे? -

जो कुछ भी हमें दिखाई दे रहा है, वह प्रकृति का सौंदर्ययुक्त वातावरण है, जिसके आधार पर सभी टिके हुए हैं। जो कुछ भी हमारे अनुभव में आ रहा है या जिन तत्वों का हम अनुभव कर रहे हैं, वे ही तत्व पर्यावरण की रचना करते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व वनस्पति ये पाँच स्थावर जीव हैं। इन पाँचों के कारण कीट - पतंगे, पशु - पक्षी एवं मनुष्य आदि का स्थान बना हुआ है, इनके बिना कोई भी जीवित नहीं रह सकता। इनकी मुख्यता जब तक बनी रहेगी तब तक पर्यावरण की सृष्टि गतिशील बनी रहेगी। भौतिक जगत् की क्रियाएँ गतिशील बनी रहेगी। भौतिक जगत् की क्रियाएँ भी विद्यमान रहेगी। जैसे ही पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, पेड़ - पौधे आदि का अस्तित्व प्रदूषण के कारण प्रभावित होगा तो उससे प्रत्येक जीवधारी के जीवन पर भी प्रभाव पड़ेगा। पर्यावरण की सृष्टि में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही कारक जब तक विद्यमान रहते है, तब तक पदार्थ, दशाएँ, उनका बल जीवन और समय सभी कारक क्रियात्मक रूप को लिए हुए प्रकृति को अनुकूल बनाए रहेंगे।

प्रकृति के संसाधनों में समरसता होने पर सौम्यता, सुंदरता आदि बनी रहेगी, इससे प्राणी मात्र को यथेष्ठ शक्ति मिलेगी। जीवन के लिए स्वाभाविक व अनुकूल संसाधन भी मिलेंगे। संपूर्ण जीव सृष्टि के लिए सभी तरह की सामग्रियाँ पृथ्वी मंडल से प्राप्त होती है। समग्र जीवनदान देने वाली वनस्पतियाँ हैं, जल, अग्नि एवं वायु भी इनमें विशेष योगदान देती हैं। आधुनिक दृष्टि से इन पर विचार करते हैं तो यही कहने में आता है कि आज मानसिक प्रदूषण एवं प्राकृतिक प्रदूषण दोनों की विषमता के रूप को लिए हुए है। आज की स्थिति इन दोनों ही कारणों से स्पष्ट हो जाती है। भविष्य का वातावरण इन्हीं से सुरक्षित हो सकता है। इसके लिए हमें अनेकांत की सूझबूझ पर ध्यान देना होगा। जिसमें यही कथन किया गया है कि अनेक धर्म, अनेक समूह, सह - अस्तित्व, समभाव आदि वर्ग भेद को मिटा सकता है।

प्रकृति और मनुष्य -

हमारे सूत्रग्रंथों में स्पष्ट संकेत किया है कि जितने भी प्रकृति के साधन है, वे सभी प्राणीमात्र के साधन हैं, पेड़ जो वायु का संचार करते है, उन्हें मनुष्य ग्रहण करता है तथा मनुष्य जो वायु छोड़ता है उसे पेड़ - पौधे ग्रहण करते हैं। अर्थात् एक दूसरे के बिना किसी का भी काम नहीं चल सकता।

'इमंपि जाइधम्मय, एयंपि जाइधम्मयं,
इमंपि बुड्ढिधम्मयं, एयंपि बुड्ढिधम्मयं,
इमंपि चित्तमंतयं, इमंपि चित्तमंतये,
इमंपि छिन्नं मिलति, एयंपि छिन्नं मिलति।'

जैसे मैं जन्म लेने वाला हूँ, ये वनस्पति आदि भी जन्म धारण करने वाले हैं, मैं बढ़ने वाला हूँ, ये भी बढ़ने वाले हैं, मैं भी सजीव हूँ, ये भी सजीव हैं, मैं भी कष्ट पहुँचाने पर कष्ट का अनुभव करता हूँ ये भी अनुभव करते हैं, इत्यादि कथन सादृश्यता के साथ यह जागृति प्रदान करता है कि यदि ऐसा न हो, या केवल अपने आप को सर्वोपरि मानता रहें तो विश्व, विश्व नहीं रहेगा।

''**विभज्जमाणां अणेमतो**''। (सं. सू. 14) अर्थात् परस्पर विभज्यमान / सापेक्ष्य कथन करना अनेकांत है, एक दूसरे को जीवन दान देना इसकी प्रमुखता विशेषता है। अनेकांत की सापेक्ष्य दृष्टि में पर्यावरण की समग्र दृष्टि है, यदि सापेक्ष्य दृष्टि, निरपेक्ष्य हो जाती है या उच्छेदवादी / नाशवादी हो जाती है, तो सापेक्ष्य दृष्टि फलीभूत नहीं हो सकती। खेत बोना, खेती करना, कृषक का कर्त्तव्य है, उसके साथ उसका संरक्षण, संवर्धन, उसकी सुरक्षा आदि भी उसके साथ जुड़ी हुई है। फसल चाहिए तो उसका संरक्षण भी करना होगा। अर्थात् विधि व निषेध दोनों ही कार्य करना होंगे। अनेकांत के घटक में सार्वभौमिकता है अत: इसकी प्रस्तुति पर विचार करने से सृष्टि ही सृष्टि है।

अनेकांत की विचारधारा में विश्व की जटिल से जटिल समस्याओं का समाधान हैं, आप जो कहते हैं, वह भी ठीक है और दूसरे जो कहते हैं, वह भी ठीक है। एक के कहने में किसी अपेक्षा का बोध होता है और दूसरे के कथन करने में भी किसी पक्ष का समावेश होता है। अत: प्रत्येक का कथन, वचन, व्यवहार, कुटुम्ब परिवार, समान देश राष्ट्र आदि के विकास में सहकारी है। जो विकास या समन्वयात्मक दृष्टिकोण है, वही जीवन का विज्ञान है। इसका जीवन दर्शन ''जीवाणं रक्खंण'' पर केंद्रित है।

प्राप्त - 4.7.97

जैन विद्या का पठनीय षट्मासिक

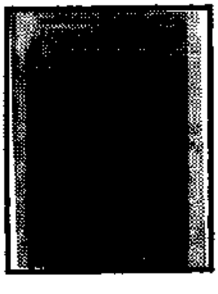

JINAMANJARI
Editor - S.A. Bhubanendra Kumar
Periodicity - Bi-annual (April & October)
Publisher - **Brahmi Society, Canada-U.S.A.**
Contact - S.A. Bhuvanendra Kumar
4665, Moccasin Trail,
mISSISSAUGA, oNTARIO,
canada l4z 2w5

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार

श्री दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, इन्दौर द्वारा जैन साहित्य के सृजन, अध्ययन, अनुसधान को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के अन्तर्गत रुपये 25,000=00 का कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रतिवर्ष देने का निर्णय 1992 में लिया गया था। इसके अन्तर्गत नगद राशि के अतिरिक्त लेखक को प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिन्ह, शाल, श्रीफल भेंट कर सम्मानित किया जाता है।

पूर्व वर्षों की भांति वर्ष 1998 के पुरस्कार हेतु विज्ञान की किसी एक विधा यथा गणित, भौतिकी, रसायन विज्ञान, प्राणि विज्ञान, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि के क्षेत्रों में जैनाचार्यों के योगदान को समग्र रूप में रेखांकित करने वाली 1994-98 के मध्य प्रकाशित अथवा अप्रकाशित हिन्दी/अंग्रेजी में लिखित मौलिक कृतियाँ **28.02.1999** तक सादर आमंत्रित की गई थी। प्राप्त प्रविष्टियों का मूल्यांकन कार्य प्रगति पर है। निर्णय की घोषणा जनवरी 2000 में की जायेगी।

वर्ष 1999 के पुरस्कार हेतु जैनधर्म की किसी भी विधा पर लिखित अद्यतन अप्रकाशित मौलिक एकल कृति 28.2.2000 तक आमंत्रित है। प्रविष्टियों हेतु निर्धारित आवेदन पत्र एवं नियमावली कार्यालय से प्राप्त की जा सकती हैं।

ज्ञानोदय पुरस्कार

श्रीमती शांतादेवी रतनलालजी बोबरा की स्मृति में श्री सूरजमलजी बोबरा, इन्दौर द्वारा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के माध्यम से ज्ञानोदय पुरस्कार की स्थापना 1998 से की गई है। यह सर्वविदित तथ्य है कि दर्शन एवं साहित्य की अपेक्षा इतिहास एवं पुरातत्व के क्षेत्र में मौलिक शोध की मात्रा अल्प रहती है। फलत: यह पुरस्कार जैन इतिहास के क्षेत्र में मौलिक शोध को समर्पित किया गया है। इसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष जैन इतिहास के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र/पुस्तक प्रस्तुत करने वाले विद्वान को रु. 5,001=00 की नगद राशि, प्रशस्ति पत्र, शाल एवं श्रीफल से सम्मानित किया जायेगा।

1994-98 की अवधि में प्रकाशित अथवा अप्रकाशित जैन इतिहास/पुरातत्व विषयक मौलिक शोधपूर्ण लेख/पुस्तक के आमंत्रण की प्रतिक्रिया में 31.12.98 तक हमें 6 प्रविष्टियाँ प्राप्त हुई। इनका मूल्यांकन **प्रो. सी. के. तिवारी,** से.नि. प्राध्यापक-इतिहास, **प्रो. जे.सी. उपाध्याय,** प्राध्यापक-इतिहास एवं **श्री सूरजमल बोबरा** के त्रिसदस्यीय निर्णायक मंडल द्वारा किया गया। निर्णायक मंडल की अनुशंसा पर **श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल,** अध्यक्ष-कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने ज्ञानोदय पुरस्कार - 98 की निम्नवत् घोषणा की है -

डॉ. शैलेन्द्र रस्तोगी, पूर्व निदेशक-रामकथा संग्रहालय (उ.प्र. सरकार का संग्रहालय), अयोध्या, निवास - 223/10, रस्तोगी टोला, राजा बाजार, लखनऊ। ***जैनधर्म कला प्राण ऋषभदेव और उनके अभिलेखीय साक्ष्य,*** अप्रकाशित पुस्तक।

डॉ. रस्तोगी को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा निकट भविष्य में आयोजित होने वाले समारोह में इस पुरस्कार से सम्मानित किया जायेगा। 1999 के पुरस्कार हेतु 1995-99 की अवधि में प्रकाशित/अप्रकाशित मौलिक शोधपूर्ण लेख/पुस्तकें 31 मार्च 2000 तक आमंत्रित हैं। प्रस्ताव पत्र का प्रारूप एवं नियमावली कार्यालय से प्राप्त की जा सकती हैं।

देवकुमारसिंह कासलीवाल — अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन — मानद सचिव

वर्ष - 11, अंक - 4, अक्टूबर 99, 41 - 43

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

प्रकृति पर्यावरण के संदर्भ में आहार का स्वरूप

■ राजेन्द्रकुमार बंसल *

जीवधारी अपना जीवन बनाये रखने हेतु प्रकृति के भोज्य उपहारों पर निर्भर करते हैं। प्रकृति के पंचभूत तत्त्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति हैं। ये न केवल परस्पर एक - दूसरे के जीवन का पोषण करते हैं बल्कि वे अन्य जीवधारियों को पोषण सामग्री तथा जीवन बनाये रखने हेतु अनुकूल पर्यावरण का निर्माण करते हैं। पंचभूत तत्त्वों की यह क्रिया - प्रतिक्रिया प्रकृति के नियमों के अन्तर्गत सहज, स्वाधीन एवं स्वतंत्र होती है जो किसी भी प्रकार के कृत्रिम या आकस्मिक असंतुलन को दूर करने में सक्षम होती है। प्रकृति की यह व्यवस्था परिवर्तन के मध्य स्थायित्व के नियम से जुड़ी हुई है जो जड़ - चेतन जीवों के मध्य अपना स्थायित्व कायम रखते हुए परस्पर उपकार करने की प्रवृत्ति को पुष्ट करती है।

जीवधारियों को स्थूल रूप से दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। पहले वे जो प्रकृति के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं जिन्हें पंचभूत तत्त्व भी कहा जाता है। यह तत्त्व परस्पर एक - दूसरे का सहयोग कर भोजन - सामग्री प्रदान करते हैं जिसके लिये उन्हें पृथक से परिश्रम नहीं करना पड़ता। दूसरे प्रकार के जीवधारियों में कीड़े - मकोड़े, पशु - पक्षी आदि सम्मिलित हैं। ये जीवधारी अपना भोजन प्रायः अपने शरीर की आकृति एवं जीवन को कायम रखने की क्षमता शक्ति आदि के अनुसार प्रकृति एवं अन्य जीवों के कलेवर के रूप में ग्रहण करते हैं। उनके भोजन की इस आदत का विश्लेषण करने पर यह तथ्य प्रकट होता है कि एक जीव का कलेवर दूसरे जीव का भोजन होता है भले ही उस कलेवर का स्वरूप वनस्पति - बीज - फल रूप में हो या अन्य रूप में हो।

भोजन की दृष्टि से जानवरों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक वे जिनका जीवन वनस्पति पर निर्भर करता है जैसे गाय, बैल, गेंडा, बकरी, घोड़ा, हाथी, नीलगाय, साभर आदि। ये जानवर शाकाहारी कहलाते हैं। इन जानवरों का पैट, दांत, जबड़े, आंतों आदि की बनावट भी उसी प्रकार की होती है। इनकी मुखाकृति सहज, सौम्य होती है। ऐसे जीवों के नेत्रों से रात्रि में नीली रोशनी निकलती है। ये पशु प्रायः दिन में अपना भोजन करते हैं और रात्रि में विश्राम करते हैं। दूसरे प्रकार के पशुओं का भोजन उनसे कम शक्तिवान जानवरों का कलेवर होता है अर्थात् वे मांसाहारी होते हैं जिसे वे शिकार करके प्राप्त करते हैं। ऐसे जानवर सिंह, तेंदुआ, भेड़िया, सियार, चीता आदि होते हैं। इन जानवरों के दांत पैने - नुकीले, आंतें छोटी और आंखें लाल होती हैं। इनके चेहरे से हिंसक, क्रूर एवं रौद्र परिणामों की झलक सहज ही दिखायी देती है। ये जानवर प्रायः लुक - छिपकर विशेषकर रात्रि में भोजन का शिकार करते हैं और दिन में खोह या माँद में घुसकर विश्राम करते हैं। रात्रि में उनकी आंख से लाल रंग की रोशनी निकलती है जो उनके आन्तरिक क्रूर परिणामों की सूचक होती है। ये पशु अपने भोज्य पशुओं की हिंसा अपनी उदरपूर्ति की सीमा तक करते हैं। वे अपने मनोरंजन या शक्ति प्रदर्शन के लिये अन्य जानवरों की हत्या या उन्हें पीड़ा नहीं पहुँचाते।

शाकाहारी एवं मांसाहारी जीवों के मध्य तुलना करने पर यह बात अनुभव में आती है कि हाथी - गेंडा - घोड़ा आदि शाकाहारी पशु, मांसाहारी शेर - चीता की तुलना में अधिक ताकतवर होते हैं। शाकाहारी पशु प्रकृति की स्वचालित व्यवस्था के नियमों में न्यूनतम हस्तक्षेप

* बी - 369, ओरियन्ट पेपर मिल्स कालोनी, अमलाई - 484 119 जिला शहडोल (म.प्र.)

करते हैं। इनका जीवन दूसरे जीवधारियों के लिये भी उपयोगी होता है जबकि मांसाहारी शेर - चीते आंतरिक रूप से शक्तिहीन भयभीत तो रहते ही हैं, बाह्य में वे प्रकृति की व्यवस्था में विघ्न पैदाकर उसे असंतुलित भी करते हैं। जीवधारियों के भोजन, उनकी दिनचर्या तथा दूसरे जीवधारियों एवं प्रकृति के साथ सह - सम्बन्धों की दृष्टि से मांसाहारी जीवों की तुलना में शाकाहारी जीव प्रकृति के अधिक निकट होते हैं और वे परस्पर उपकार एवं सद्भाव के साथ अपना जीवन जीते हैं। उनका जीवन सहज, सरल तो होता ही है, दूसरों के लिये वे उपयोगी एवं सहायक सिद्ध होते हैं।

मनुष्यों की स्थिति इन जीवधारियों की तुलना में कुछ भिन्न है। वह प्रकृति का सर्वाधिक सामर्थ्यवान, ज्ञानवान एवं बुद्धिमान उपहार है। उसे भोग के साधनों के साथ ही ज्ञान के विकास के साधन भी उपलब्ध हैं। यह मनुष्य के स्वविवेक एवं संस्कार पर निर्भर करता है कि वह अपनी शक्तियों का सदुपयोग स्व - कल्याण के साथ विश्व के अन्य जीवों के कल्याण में करता है या स्वार्थी बना दूसरों के हितों का शोधक एवं पर - पीड़क बनता है। इस दृष्टि से मनुष्य की आध्यात्मिकता का चरम बिन्दु परमात्मा पद पाने की सामर्थ्य है तो दूसरी ओर वह क्रूर, निर्दयी, स्वार्थी, परपीड़क भी बन सकता है।

शरीर एक पात्र है जिसमें चैतन्य - आत्मा निवास करती हैं। पात्र यदि स्वच्छ है तो उसके साथ निवास करने वाला साथी भी तदनुसार स्वच्छ सरल होगा। यदि पात्र विषाक्त है तो उसका प्रभाव चैतन्य आत्मा पर पड़े बिना नहीं रहेगा। शरीर को कार्यशील बनाये रखने के लिये भोजन की आवश्यकता होती है। यद्यपि शरीर - रचना एवं प्रकृति से मनुष्य शाकाहारी है फिर भी स्वाद, मनोरंजन एवं स्थानीय विशेषताओं की दृष्टि से मानवीय भोजन का स्वरूप क्या हो, यह विचार विवाद का विषय बनता जा रहा है। इस पर विचार करने के कई पहलू हैं जिनके आधार पर मानव के श्रेष्ठ आहार का निर्णय किया जा सकता है।

शारीरिक संचना - शरीर रचना की दृष्टि से मनुष्य का आहार कृषि - उपज, वनस्पति एवं फलों के साथ जुड़ा हुआ है। मनुष्य के दांत, जबड़े, आंतों की लम्बाई, पेट का आकार एवं स्वभाव आदि सभी दृष्टियों से विचार करने पर मनुष्य का भोजन अन्न, फल एवं वनस्पतियाँ हैं जिसे सात्विक आहार कहा जाता है। मांसाहार जिसमें अण्डे, मछली, मांस सम्मिलित हैं, मनुष्य की शारीरिक रचना की दृष्टि से अनुपयुक्त एवं वर्जित आहार है। अन्नाहार से कार्बोहाइड्रेट, रेशे, विटामिन, खनिज, प्रोटीन और चर्बी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती है। विविध प्रकार के फल, बीज, सूखे मेवे, दालें, शक्कर, मूंगफली, तेल एवं दूध आदि का यदि संतुलित एवं उचित मात्रा में उपयोग किया जाये तो उनसे शरीर की आवश्यकता पूर्ति के तत्त्व तो प्राप्त होते ही है, शरीर को बलिष्ठ निरोग एवं दीर्घायु बनाये रखने हेतु पर्याप्त तत्त्व भी मिलते हैं। अन्नाहार एवं शाकाहार में शारीरिक रोगों के निरोध की क्षमता भी विद्यमान है जबकि मांसाहार मानव शरीर रचना के प्रतिकूल एवं अनेक रोगों को उत्पन्न करने वाला तामसिक भोजन है जो इन्द्रिय भोग को उत्प्रेरित करता है।

नैसर्गिक न्याय - नैसर्गिक न्याय एवं नैतिक दृष्टि से व्यक्ति को अपनी उदर पूर्ति एवं भोग के वे ही साधन अपनाने चाहिये जो विश्व के अन्य जीवों के लिये घातक या कष्टदायक न हो। अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य की महत्ता इस बात से है कि वह प्रकृति की व्यवस्था में न्यूनतम हस्तक्षेप करे और अन्य जीवों को निर्भयतापूर्वक जीवनयापन करने दे। क्योंकि विश्व की सभी जीवात्मायें स्वभाव की दृष्टि से समान है और सब अपनी - अपनी मर्यादाओं एवं सीमाओं में अधिकतम सुखी रखना चाहती है। इस दृष्टि से अपने पेट को

दूसरे जीवों की कब्रगाह बनाना अनैसर्गिक, अन्यायपूर्ण है। समता और न्याय की पुकार लगाने वाले मानव को पशु - पक्षियों और कीड़े - मकोड़ों के प्रति सहिष्णु और उदार होना अनिवार्य है।

पर्यावरणीय दृष्टि – आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों के साथ विविध प्रकार के विषाक्त एवं दूषित रसायनों एवं दूषित गैसों के कारण वायुमंडल विकृत हुआ है जिसके कारण प्रकृति का स्वचालित संतुलन बनाये रखने की शक्ति एवं व्यवस्था भंग हुई है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, असामयिक वृष्टि, अत्यधिक गर्मी - सर्दी एवं विषाक्त गैसों के दुष्प्रभाव से न केवल प्रकृति बल्कि पशु - पक्षी एवं मानवजीवन भी आहत हुआ है जिसके आसन्न संकट के कारण सभी भयभीत भी हैं। पर्यावरण की शुद्धता का आन्दोलन इसी की परिणति है। वन्य जीवों एवं मनुष्य के भोजन के स्वरूप का सम्बन्ध पर्यावरण की शुद्धता से निकट रूप से जुड़ा हुआ है। मनुष्य के अन्नाहारी - शाकाहारी रहने पर पंचभूत तत्त्वों के साधनों का समुचित दोहन होता है और उससे जुड़ी प्रकृति की व्यवस्था में संतुलन बना रहता है। मांसाहार एवं मनोरंजन हेतु जीवधारियों की हिंसा होने पर प्रकृति उन जीवधारियों की सेवाओं से वंचित हो जाती है, साथ ही जीवों के करुण क्रन्दन से पर्यावरण भी अदृश्य रूप से शोक एवं आर्तपूर्ण हो जाता है, जो अंतत: मनुष्य के चिंतन एवं आचार को दूषित करता है। अधोगति की ओर ले जाने वाला यह दुष्चक्र तब तक चलता है जब तक कि पुनरुत्थान हेतु नवीन आधार की संरचना तैयार नहीं हो जाती। इस दृष्टि से अन्नाहार एवं शाकाहार श्रेष्ठ आहार है।

आध्यात्मिक दृष्टि – आध्यात्मिक दृष्टि चेतन जगत को जड़ जगत से अलग करती है। इसका लक्ष्य अपने में, अपने द्वारा, अपने से सुख - आनन्द पाना है जो प्रत्येक जीवात्मा की स्वतंत्रता एवं स्वावलम्बन पर आधारित है। इस लक्ष्य का साधक व्यक्ति प्रकृति की व्यवस्था में न्यूनतम हस्तक्षेप या अहस्तक्षेप की नीति के अनुरूप अपना आचार - आहार तय करता है। अन्न या बीज में यद्यपि जीव धारण की क्षमता होती है फिर भी वह निर्जीव ही होता है। अत: सात्विक - सदाचारी व्यक्ति का शुद्ध अहिंसक आहार अन्नाहार ही होता है फिर शाक - सब्जी एवं फलों का नम्बर आता है जिसमें अति न्यून हिंसा होती है। आवश्यकता की स्थिति में वह इनको मर्यादानुसार ग्रहण करता है। भोजन का समय एवं अन्तराल की दृष्टि से दिन का भोजन प्रकृति के अनुकूल होता है जबकि रात्रि भोजन तामसिकता उत्पन्न करता है। समग्र दृष्टि से अण्डा - मांसाहार, अनिष्ट - अनुपसेव्य एवं नशाकारक वस्तुएँ मानवीय शरीर रचना, स्वभाव, स्वास्थ्य, जीवन - लक्ष्य रूप समता और न्याय की दृष्टि से प्रतिकूल, अहितकारी होने से त्याज्य एवं वर्जित है।

पश्चिम के देशों ने इस तथ्य को समझा है। यही कारण है कि पश्चिम में शाकाहार का प्रचलन द्रुतगति से बढ़ रहा है जबकि हम भारतवासी पश्चिमी जगत की विकृतियों से प्रेरित होकर शाकाहार छोड़कर मांसाहारी हो रहे हैं।

उक्त सभी दृष्टियों से विचार करने पर यह सहज रूप से स्पष्ट होता है कि न केवल उच्च आध्यात्मिक ऊँचाइयों को प्राप्त करने, बल्कि प्राणियों के मध्य परस्पर - उपकार, समता का जीवन जीने एवं शोषण से मुक्ति का अधिकार प्राप्त करना है तो प्रकृति में अहस्तक्षेप की नीति की दृष्टि से अन्नाहार एवं शाकाहार ही पूर्ण सरल, सात्विक एवं सुविधाजनक है। इसलिये धार्मिक - सामाजिक रूढ़ि परम्परा एवं आहार से जुड़ी प्राणी - हिंसा को त्यागकर अपने समान सभी प्राणियों को जीने का अवसर प्रदान करें, यही श्रेयस्कर है।

प्राप्त – 16.10.95

हमारे नवीन प्रकाशन

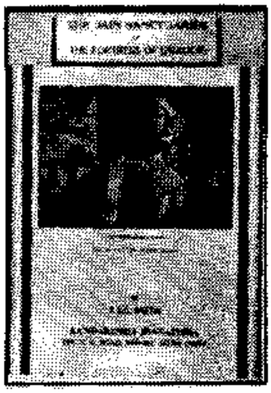

THE JAIN SANCTUARIES OF THE FORTRESS OF GWALIOR

By - **Dr. T.V.G. SASTRI**

Price - Rs. 500.00 (India)
U.S.$ 50.00 (Abroad)

I.S.B.N. 81-86933-12-3

मूलसंघ और उसका प्राचीन साहित्य

- लेखक -

पं. नाथूलाल जैन शास्त्री

मूल्य - रु. 70.00

I.S.B.N. 81-86933-14-X

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित साहित्य

	पुस्तक का नाम	लेखक	I.S.B.N.
✲ 1.	जैनधर्म का सरल परिचय	पं. बलभद्र जैन	81-86933-00-X
2.	बालबोध जैनधर्म, पहला भाग संशोधित	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-01-8
3.	बालबोध जैनधर्म, दूसरा भाग	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-02-6
4.	बालबोध जैनधर्म, तीसरा भाग	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-03-4
5.	बालबोध जैनधर्म, चौथा भाग	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-04-2
6.	नैतिक शिक्षा, प्रथम भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-05-0
7.	नैतिक शिक्षा, दूसरा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-06-9
8.	नैतिक शिक्षा, तीसरा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-07-7
9.	नैतिक शिक्षा, चौथा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-08-5
10.	नैतिक शिक्षा, पांचवां भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-09-3
11.	नैतिक शिक्षा, छठा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-10-7
12.	नैतिक शिक्षा, सातवां भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-11-5
13.	The Jain Sanctuaries of The Fortress of Gwalior	Dr. T.V.G. Sastri	81-86933-12-3
14.	जैन धर्म - विश्व धर्म	पं. नाथूराम डोंगरीय जैन	81-86933-13-1
15.	मूलसंघ और उसका प्राचीन साहित्य	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-14-X
16.	Jaina Dharma - Vishva Dharma	Pt. Nathuram Dongariya Jain	81-86933-15-8

✲ अनुपलब्ध

प्राप्ति सम्पर्क : कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001

वर्ष - 11, अंक - 4, अक्टूबर 99, 45 - 48

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन धर्म और पर्यावरण

■ मालती जैन *

मनुष्य ने जब इस धरती पर आंखे खोलीं, तब उसके नीचे मुलायम घास का बिछौना था, ऊपर चमकीले तारों से टँका नीला वितान। मंद सुगंधित बयार ने उसे थपकियाँ दीं और पक्षियों ने उसे अपनी मीठी आवाज में लोरियाँ सुनाईं। बाग - बगीचों में मुस्कराते फूलों ने उसका स्वागत किया, गगनचुम्बी पर्वतमालाओं ने उसे पौरुष और दृढ़ता का संदेश दिया और बलखाती इठलाती नदियों की गति में उसे **''चरैवेति चरैवेति''**, **''चलना जीवन की कहानी, रूकना मौत की निशानी''** की अनुगूँज सुनाई दी। होश संभालते ही उसे प्रतीत हुआ कि प्रकृति उसकी अभिन्न जीवन सहचरी है, जीवनदात्री है, शिक्षिका है। पुरुष की पूर्णता प्रकृति में निहित है। मानव ने प्रकृति से अपनी आत्मीयता स्थापित की और प्रतिदान में प्रकृति ने अपनी समस्त सम्पदा उसे सौंप दी। मानव सभ्यता का यह स्वर्णिम काल था।

समय ने करवट ली। प्रकृति की गोद में पले निश्छल हृदय पुरुष को स्वार्थपरता ने आ घेरा। उसकी आवश्यकतायें महत्वाकांक्षाओं में परिवर्तित हुईं। प्रकृति पर एकाधिकार करने की कुत्सित भावना में अंधे हो वह चीख उठा -

यह जलन नहीं सह सकता मैं, चाहिए मुझे मेरा ममत्व॥
इस पंचभूत की रचना में, मैं रमण करूँ बन एक तत्व॥[1]

यांत्रिक सभ्यता के विकास की अंधी दौड़ में पुरुष ने प्रकृति का भरपूर दोहन किया, बिना यह सोचे समझे कि उसके हाथों प्रकृति पर किए जाने वाले ये अत्याचार एक दिन उसके अस्तित्व के लिए खतरा बन जायेंगे। परिणाम सामने है - आज समस्त विश्व का प्रदूषित पर्यावरण मानव जाति के अस्तित्व के समक्ष एक ज्वलंत प्रश्नचिन्ह बनकर आ खड़ा हुआ है। **'मिट्टी, पानी और बयार - जिन्दा रहने के ये आधार'** आज मानव जाति के विनाश के साधन बन गये हैं। पर्यावरण आज का सर्वाधिक चर्चित विषय है। पर्यावरण पर राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संगोष्ठियों और परिचर्चाओं का आयोजन किया जा रहा है **'अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण दिवस'**, **'पृथ्वी दिवस'** जैसे दिवस मनाये जा रहे हैं। वैज्ञानिक चितिंत हैं, राष्ट्राध्यक्ष व्यग्र हैं - प्रदूषित पर्यावरण से मानव जाति की रक्षा कैसे हो ?

चिन्ता के इस घने कुहासे में हमें आलोक की एक प्रखर किरण दृष्टिगत हो रही है जैन धर्म के सिद्धान्तों में, जिनकी आधारशिला है - **'जिओ और जीने दो'**। इस सूत्रवाक्य को पर्यावरण रक्षा के नारे के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। आचारांग सूत्र में कहा गया है -

सव्वे पाणा पिआउणा। सुहसाया दुक्खपटिकूला॥
अप्पियवधो जीवितं पियं। सव्वेसिं जीवेउ कामा, नाय वाएज्ज कन्चण॥[2]

''विश्व के समस्त प्राणी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। सबको सुख प्रिय है, दुख अप्रिय है। सबको अपना जीवन प्यारा है इसलिए किसी का वध मत करो।''

अहिंसा की इस विचारधारा की पृष्ठभूमि में एक सिद्धांत है -

''परस्परोपग्रहो जीवानाम्''[3]

* अध्यक्ष - हिन्दी विभाग, चित्रगुप्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मैनपुरी (उ.प्र.)

अर्थात परस्पर उपकार करना ही जीवन का कर्त्तव्य है। यह उपकार दया का प्रतीक है। दया पर्यावरण का बीमा है। कहा गया है -

''दयानदी महातीरे सर्वेधर्मास्तृणांकुरा:''

अर्थात् दया रूपी नदी के विशाल तट पर सभी धर्मों के तृणांकुर उगते हैं।

जैन धर्म में प्रतिपादित पंच महाव्रत पर्यावरण प्रदूषण को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। अहिंसा जहाँ अन्य प्राणियों का वध एवं कष्ट देने का निषेध करती है, वहाँ सत्य, छल, कपट, परनिन्दा तथा कठोर वचनों के प्रयोग को वर्जित कर पारस्परिक सद्भाव और मैत्री का संवर्द्धन करती है। अस्तेय का सिद्धान्त शासकीय जंगलों से लकड़ी की चोरी, अवैध शिकार करके वन्य प्राणियों के चमड़े, सींग, हड्डी, दांत, चर्बी, ताँत आदि की चोरी पर रोक लगाने में सक्षम है। इस संदर्भ में आचार्य उमास्वामी ने जैन श्रावक के लिए अचौर्य व्रत के जिन अतीचारों का उल्लेख किया है, वे दृष्टव्य हैं -

''स्तेन प्रयोग तदाहत दान विरूद्ध राज्यातिक्रम
हीनाधिक मानोन्मान प्रतिरूपक व्यवहारा:''[4]

अर्थात चोरी की प्रेरणा देना, चोरी का माल खरीदना, राजाज्ञा के विरूद्ध चलना, माल के खरीदने एवं बेचने में न्यून या अधिक परिमाण के बाँट रखना, अच्छे माल में घटिया की मिलावट।

अपरिग्रह का सिद्धान्त पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिए रामबाण औषधि है। प्राकृतिक सम्पदा के अमर्यादित दोहन के पीछे मनुष्य की अमर्यादित परिग्रही वृत्ति है। तत्वार्थ सूत्र में कहा गया है -

''मूर्च्छा परिग्रह''[5]

अर्थात पदार्थों में आसक्ति ही परिग्रह। जहाँ अभाव है, वहां दुख है। आत्मा सब अभावों का अभाव चाहती है। अपरिग्रही वृत्ति का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण जैन साधुओं की दिगम्बरी मुद्रा है। दिशायें ही जिसका अम्बर हों, धरती ही जिसका बिछौना हो, आकाश ही जिसका ओढ़ना हो, मयूरपिच्छी से स्थल बुहार कर जो उठता - बैठता हो, ईर्यापथ पर विहार करता हो, भाषा, समिति और वचन गुप्ति का पालन करता हुआ जो हित - मित - प्रिय वचन बोलता हो, दिन में एक बार करपात्र में शुद्ध सात्विक भोजन ग्रहण करता हो, ऐसे निश्छल निसर्ग पुत्र का कोई भी आचरण कैसे पर्यावरण प्रदूषित करेगा? प्रभुता सम्पन्न राष्ट्रों का आयुध भंडार, विश्व की महाशक्तियों में परमाणु परीक्षण की होड़, अरब राष्ट्रों के तेल भंडार, मनुष्य की असंयमी वृत्ति के ही विनाशकारी परिणाम हैं।

ब्रह्मचर्य महाव्रत भी पर्यावरण की रक्षा में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। बलात्कार की घटनाओं में होने वाली दिन दूनी, रात चौगुनी वृद्धि, भ्रूण हत्या, एड्स जैसी महामारी का संक्रमण, अश्लील विज्ञापन, चलचित्र एवं अश्लील साहित्य का बाहुल्य मानव की असंयमी प्रवृत्ति के ही दुष्परिणाम है। भगवान महावीर ने कहा है -

'संयम ही जीवन है, असंयम ही मृत्यु है। संयम का मार्ग साधना का राजमार्ग है।'[6]

धर्म के तीन चरण है - अहिंसा, संयम और तप, और ये तीनों पर्यावरण रक्षा में सहायक हैं।

जैन धर्म के तीर्थंकरों के जीवन चरित्र पर्यावरण रक्षा एवं प्रकृति प्रेम के ज्वलन्त

निदर्शन हैं। तीर्थंकरों के जन्म से पूर्व उनकी माताओं द्वारा देखे गये सोलह स्वप्न पशु जगत एवं प्राकृतिक जगत से सम्बन्धित हैं। तीर्थंकरों के गर्भ में आने के छः माह पूर्व से ही पर्यावरण की उत्कृष्टता दृष्टिगोचर होने लगती थी। रत्नों की वर्षा, सुवृष्टि, मंदबयार, भरपूर फसल - प्रकृति का समस्त परिवेश, मानो प्रकृति पुत्र के जन्म पर उत्सव मनाती थी। समवसरण के समय तीर्थंकरों के पास के सौ योजन भूमि के घेरे में रहने वाले जीवों को सुख सम्पन्नता छाने लगती थी। समवसरण की रचना अपने में प्रकृति प्रेम, मैत्री, समन्वय एवं सद्भाव का प्रतीक है। समवसरण सभा में अशोक, सप्तवर्ण, चम्पक और आमग्र वृक्षों का वर्णन प्राप्त होता है। समवसरण के कोठे में प्रत्येक जीव का स्थान निर्धारित है तथा प्राणी मात्र को तीर्थंकर की दिव्य ध्वनि सुनने का अधिकार है।

तीर्थंकरों की प्रतिमाओं पर अंकित चिन्ह पर्यावरण संरक्षण चेतना के संवाहक हैं। चौबीस तीर्थंकरों के चौबीस चिन्हों में से तेरह चिन्ह प्राणी जगत से सम्बद्ध हैं। बैल, हाथी, घोडा, बन्दर, हिरण एवं बकरा पशु जगत से सम्बन्धित है। चकवा पक्षी समूह का तथा कल्पवृक्ष वनस्पति जगत का प्रतीक है। जलचर मगर, मछली, कछुआ, शंख का जल शुद्धि में उल्लेखनीय योगदान है। लाल और नीलकमल अपने अप्रतिम सौन्दर्य और सौकुमार्य से **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** की उदघोषणा करते प्रतीत होते हैं। स्वस्तिक एवं कलश प्राणी मात्र के मंगल क्षेम के प्रतीक हैं।

तीर्थंकरों के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ जीव दया के मनोहारी उदाहरण हैं। कुमार पार्श्व का जलती आग से नाग - नागिन के जोड़े को निकालकर उनकी प्राण रक्षा करना, बन्दीगृह में बन्द पशुओं के चीत्कार को सुनकर नेमिकुमार का विवाह का कंगन तोड़कर दीक्षा ले लेना, सर्प के काटने पर भी महावीर का क्षमा भाव धारण करना, जैसी घटनाएँ जैन तीर्थंकरों की पर्यावरण संरक्षण की उत्कट भावना को ही प्रदर्शित करती है।

जैन श्रावक की दिनचर्या, उसके षट्कर्मों का विवेचन भी पर्यावरण रक्षा के सिद्धान्तों के अनुरुप है। रात्रि भोजन त्याग, जल गालन विधि, सामायिक श्रावक के ये सभी आचरण पर्यावरण रक्षा की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। नित्य स्तुत्य आलोचना पाठ, शान्ति पाठ, सामायिक पाठ की तो प्रत्येक पंक्ति पर्यावरण रक्षा का अमर संदेश देती है। जैन श्रावक शान्ति पाठ की निम्न पंक्तियों में सुखमय एवं संतुलित पर्यावरण की कामना करता है।

'होवे सारी प्रजा को सुख, बलयुत हो धर्मधारी नरेशा,
होवे वर्षा समय पै तिल भर न रहे व्याधियों का अन्देशा।
होवे चोरी न जारी सुसमय वरतै हो न दुष्काल भारी,
सारे ही देश धारैं जिनवर वृष को जो सदा सौख्यकारी॥

आलोचना पाठ पर्यावरण रक्षा में अपने प्रमाद के प्रति दुखी व्यक्ति का आन्तरिक पश्चाताप है। अपराधी श्रावक खुले हृदय से प्रकृति के विभिन्न अवयवों - पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि के प्रति कये गये अपने अपराधों के लिये क्षमायाचना करता है -

पृथ्वी बहु खोद कराई, महलादिक जाँगा चिनाई।
पुनि बिन गाल्यो जल ढोल्यो, पंखातैं पवन विलोल्यो॥
हा हा परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई।
तामधि जे जीव जु आये, ते हूँ परलोक सिधाये॥
जल मल मोरिन गिरवायो, कृमिकुल बहु घात करायो।
नदियन बिच चीर धुवाये. कोसन के जीव मराये॥

अपने अपराधों की स्पष्ट स्वीकारोक्ति के बाद यह क्षमा याचना कितनी मर्मस्पर्शी है -

'पंथहि धावर मांहि तथा त्रस जीव सब
बे इन्द्रिय तिय चउ, पंचेन्द्रिय माँहि जीव सब
तिनते क्षमा कराऊँ, मुझ पर क्षमा करो अब

और अन्त में यह मंगल कामना -

दोष रहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोय
सब जीवन के सुख बढ़ें, आनन्द मंगल होय

जैन धर्म के अनेकान्त सिद्धान्त की चर्चा के बिना पर्यावरण रक्षा की बात अधूरी रहेगी। वैचारिक हिंसा को रोकने के लिये यह सिद्धान्त अमोघ अस्त्र है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक वस्तु उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप त्रयात्मक है। प्रत्येक वस्तु विरोधी धर्मों का समन्वित रूप है। वस्तु के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए हमें अपनी दृष्टि को व्यापक बनाना होगा। ''ही'' के स्थान पर ''भी'' को प्राथमिकता देने वाले इस अनाग्रही, उदार और सन्तुलित सिद्धान्त में आत्मानुशासन तथा जीवन के अन्य विविध सन्दर्भों के लिए एक विधायक जीवन दृष्टि समाई हुई है। जर्मन विद्वान डा. हर्मन जैकोबी का यह कथन अक्षरश: सत्य है -

''स्याद्वाद से तो सर्व सत्य विचारों का द्वार खुल जाता है''

उपर्युक्त विवेचन से वह स्पष्ट है कि सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों ही दृष्टियों से जैन धर्म पर्यावरण रक्षा के प्रति अत्यधिक सजग है। एक विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि जैन धर्म केवल भौतिक पर्यावरण की शुद्धि के लिए ही प्रयत्नशील नहीं है अपितु अन्त: पर्यावरण की विशुद्धि के लिए भी प्रतिबद्ध है। भौतिक पर्यावरण की शुद्धि के लिए आत्मशुद्धि एक अनिवार्य आवश्यकता है। जैन धर्म की वर्णमाला का केवल एक अक्षर अ - (अ से अनेकान्त, अ से अहिंसा और अ से अपरिग्रह) ही मनुष्य के अन्तर के समस्त प्रदूषण को विनष्ट करने में सक्षम है। अत: निराश होने की आवश्यकता नहीं। इस दमघोटू प्रदूषित वातावरण में अभी भी एक नदी सुरक्षित है जिसमें स्नान करने से बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रदूषण समाप्त हो जाते हैं। यह अलौकिक नदी है -

आत्मानदी संयम तोय पूर्णा, सत्यावहा शीलतटा दयोर्मि:।
तत्राभिषेकं कुरू पाण्डुपुत्र, न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा॥

आइये हम और आप मिलकर इस नदी में स्नान करें।

सन्दर्भ स्थल -

1. कामायनी - जयशंकर प्रसाद
2. आचारांग सूत्र - 1 / 2 / 3
3. तत्वार्थ सूत्र - उमास्वामी
4. तत्वार्थ सूत्र - उमास्वामी
5. तत्वार्थ सूत्र - उमास्वामी
6. वर्धमान चरित्र - असग 17 / 38 - 41

प्राप्त - 12.6.96

Vol. 11, No. 4, Octber 99, 49 - 60

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapītha, Indore

GOŚĀLĀ MOVEMENT IN INDIA
A NONVIOLENT PERSPECTIVE FOR THE FUTURE

■ ABHAY PRAKASH JAIN *

The richness of culture of a country is measured by the treatment it offers to her sub - humans. Gośālās & Panjārāpoles are the symbol of India's cultural Heritage not only because it renders protection to cows which are the Summum Bonum (**समम बोनम**) for India's life and free energy supplier even to the poorest's hut but protection to all animals proving **"आत्मवत् सर्वे भूतेषु"** - All life is Alike.

Gośālā movement is synonimus to the protection of cows and cattle wealth of our country. It can be delineated into three phases :

1. Vedic Period.

2. India in Bondage or Pre - Independence Period and

3. Post - Independence Period.

Gośālā Movement tracks back to about five thousand years in India. It's origion is traced in vedic period for protection, preservation and development of exclusively cow and her progeny. Let it got great support from *Sanatani, Vaiśnava* and Hindus, especially devotees of Lord Krishna (भगवान श्रीकृष्ण) an Incarnation of Lord Vishnu, the protector of Universe who exemplified the work of protection and development of cow as a means for material and spiritual uplift. According to vedic concepts cows are considered sacrament and constitute material and spiritual asset to the country. At that period of time possession of herds of cows was a yard stick for measuring economic esteem or prosperity of individual and the nation. Since cows were considered as *Kāmdhenu* (giver of all desires), they were offered as gift to *Gurukulas* (Educational Institutes with Boarding and Lodging of Students, Conducted by learned personages), *Āśrams, Ṛṣīs* (Ascetics) and *Gośālās*. Regarded as indispensable for spiritual and material welfare of humanity, cow species is considered *'Aghnya'* - one which must never be killed. Our entire culture is *Go - Saṁskṛiti* culture based on Cow.

Gośālā movement In India, therefore, represents our ancient culture to reciprocate man's greatfulness to the invaluable services rendered by cow and her progeny to mankind without any distinction of caste, creed, religion or nationality. *Gośālās* have been India's age old institutions to preserve, protect & develope the cow - family. Under the influence of Jaina culture for *Jīva - dayā* (Reverence for Life) and financial assistance, majority of *Gośālās* expanded into *Piñjārāpoles* to protect all animals but cow - progeny predominant. Cow and her progeny have kept our Agro - economy alive by contributing milk, draft, organic manure,

* N - 14, Chetak Puri, Gwalior - 474009

energy, fuel and similar invaluable services to the mankind and our nation.

Cow, being the backbone of rural life and economy, care was taken for their well being and uplift. Grazing areas and grass lands *(Gocara Bhūmi)* were kept reserved in abundance everywhere. People used to donate their lands to *Gośālās* or even established *Gośālās* on any auspicious occassion or to keep alive the memory of a departed family member and this was considered as a most respectful deed in the society. *Gośālās* were institutions where young and old cows and progeny were maintained life long. Each family used *to keep cows and calf for supply of milk and milk products to the family* and male calf reared for draught and cultivation on fields. When no longer required they passed on to *Gośālās* for care. Donations in form of land, money, grass and feed were contributed to keep *Gośālās* alive. Killing or say even injuring cow and progeny was treated as no less a crime than culpable homicide.

With the change of time, growth of cities and towns, and anti Hindu foreign regimes in India, the entire socio-cultural and socioeconomic pattern of life was revolutionalised on the materialistic considerations. Even then, the cows and her progeny retained her inevitable status in the Agro-economy of our nation.

Even, during Alien domination, cow and her progeny was protected by Princely states, to the extent that the princes rushed with their nuptial Garments on, to rescue the cows and *Gośālās*. During Muslim regime and particularly Mugal period right from Humanyun to Shahajahan and Shah Alam there was complete ban on the slaughter of cow.

Unfortunately, typical policy seems to be pursued even after independence. The Solemn assurances by our great national leaders to the people, during freedom struggle, that on the dawn of independence cow-slaughter will be banned by a stroke of pen, was not honoured though Mahatma Gandhi, father of nation had established *Krishi Goseva Sangh* (कृषि गो सेवा केन्द्र) for this purpose and Vinoba Bhave was deeply involved in *Gośālās* (Cow progeny protection) work. **An expert committee appointed by Govt. of India on 16.11.1947 to study the questions of slaughter of cow, unanimously recommended ban on cow-slaughter, but the advise was floutted.** This started great discontent and to pacify the agitation Article-48 was half-heartedly introduced as directive principle.

'ARTICLE - 48'

"The state shall endeavour to organise agriculture and animal husbandary on modern and scientific lines and shall, in particular take steps for preserving and improving the breeds, and prohibiting the slaughter of cows and calves & other milch and draught cattle".

When states of Bihar, Madhya Pradesh, Rajasthan & Uttar Pradesh and

Gujarat enacted laws to ban slaughter of cow and her progeny in accordance with Article-48, Highest Judicature of the country declared these Acts as Ultra Vires, interpreting the Act against the intention, as declared in the constituent assembly. This has resulted in unlimited slaughter of cow and progent and mounting meat export by construction of mechanised slaughter houses sponsered by Government aid and creating shortage of milk and milk product and acute shortage of draught power. It was in 1946 that the Indian Council of Agricultural Research in the wing of Animal Husbandary of the Agricultural Ministry, recommended a plan to encourage *Gośālās* and *Pinjārāpoles*, being the fountain head of milk and draught power and recommended a plan to constitute statewise federation of *Gośālās* and *pinjārāpoles*. There were about 3600 Major *Gośālās* and *Pinjarāpoles* in the country and the plan was recommended to co-ordinate and streamline the activities for preservation and development of cow and cattle which were the primary source for milk and draught power in the country.

A *Go-samvardhana* council is constituted with the minister of Agriculture as Chairman and Animal Husbandary Commissioner as a member secretary and prominent *Gośālā* workers from N.G.O'S members to be nominated every three years, with power to allot small doles as Grants to *Gośālās* & *pinjārāpoles*. But this is just an eyewash and a drop in ocean to solve the basic problem of cow protection and development of progeny since the slaughter of best milking cows & progeny continues unabetedly resulting in colossal decline of the cattle wealth in the country which will be seen from the following figures quoted in a publication issue by the Animal Welfare Board of India on the report, Prepared by Central Leather Institute of Madras.

AVAILABILITY OF CATTLE PER 1000 PEOPLE IN OUR COUNTRY

YEAR	**CATTLE**
1951	430
1961	400
1981	278
1991	202
2001	116 (expected)
2011	020 (expected)

ROLE OF AGRICULTURE

Agriculture in India has two fold purposes — (1) Feeding the growing populations of the country till eternity and supplying raw materials for basic necessaries of life, (2) Providing livelihood and subsistence to the crores of rural population constituing the largest self-exployed sector. These two functions of agriculture are mutually complimentary and inalienable from each other, importance

and urgency of none can be either ignored or minimised. Cattle farming in India's agriculture is it's very heart. Agroiculture, cattle farming and subsidiary industries have to be brought into their own to embrace the nation in peace, prosperity and stability. *Gośālās* movement plays a very vital role in this direction.

Ironically, these are the truisms & axioms that do not go straight into the heart, only because they are so simple and manifast & mechanisation in agriculture is being rapidly introduced. But as Jaiprakash Narayan observed, "Those people who advocate for mechanised and the so-called scientific methods of farming in India, live in an unreal world, which has nothing to do with the realities of the country."

PILLARS OF STRENGTH

India is predominently an agricultural country. However much we rush to be an Industrially developed nation, it should not be forgotten that out of total fourty crore acres of our cultivable land, as much as 60% is cultivated by animal-power 12% by manpower and 28% by machine power. Animal power is used in cultivation, transport, water drawings in fields and similar work. Machanised farming is a distant dream. Majority of our farmers hold only one to two acres of land which can be cultivated only by animal driven ploughs. Still however, if total mechanised farming is planned, it will require atleast sixty three lacs tractors against the existing about five lacs tractors. Thirty crore tone of steel will be needed to produce all these tractors and that too without spare parts required for replacement. Our total production of steel, today, is not above even five crore tons. Total funds required to replace animal power by machine power (Tractors) will be many fold more than Rs. 93,000/- crores.

MECHANISED FARMING : AN IMPOSSIBILITY IN INDIA

62% of India's rural population possess less than half an acre and 70% of the farmers possess land less than two hectores. They cannnot afford to have tractors & allied implements for their farms.

Any forcible amalgamation of their holdings to form viable farms for mechanised farming and there by reducing farmers to a mere wage-earners is simply an impossible task. And farmers nowhere in the world part away with their land voluntarily and cheerfully.

MECHANISED FARMING : UNECONOMIC AND RUINOUS

On account of ever increasing costs of inputs, profits from mechanised farming gets rapidly marginlised, ultimately resulting into net lossess to the farmers. They are thereby forced to abandon farms and rush to the cities. Even in the U.S.A., with all sorts of resources at command, the farmers are meeting the same fate. During the thirty years from 1919 to 1949 which included

the great depression. and the IInd world war, eight lacs (8,00,000/-) families lost their land, while during 1949 to 1989, the period of great prosperity, some 34,00,000/- (thirthy four lacs) famillies have lost their inheritances and in Canada 1/10 of all farmers went out of business in 1989 due to financial collapse.

Mechanised farming, inevitably accompanied by chemicals, fertilizers and pesticides, does nothing to keep soil in good heart. Soil starved of organic manuring gets impoverished and ultimately fertility is irretievably lost. A farming method that changes large tracks of land, once most fertile into barren desert is by no means scientific and incapable to feed mankind for a longer time.

FERTILISER IMPORTS		FERTILISER SUBSIDY	
1950-51	Nil	1970-71	41 Crores.
1960-51	13 Crores	1980-81	505 Crores.
1970-71	86 Crores	1991-92	6219 Crores.
1980-81	810 Crores	1992-03	6567 Crores.
1990-91	2352 Crores		
1992-93	4500 Crores		

Food Subsidy (1966 to 1993) 28 Years	=	29798 Crores
Investment on Fertilisation Plants	=	Rs. 11,171 Crores.
Fertilisers Import in 1992-93	=	4,500 Crores.
Pesticides consumption from 1952-53 to 1990-91	=	Increased by 3208%

(Figures from Economic Survery - 8th Plan)

Slaughter of cattle wealth has places tremendous monetory strain on our economy resulting in unbearable national debt which if not managed promptly, might lead to, which may perhaps be called, National Insolvancy.

Internal Debt	=	3,34,914 Crores.
External Debt	=	3,26,450 Crores.

1980-81 Internal Interest Liability was 2604 Crores.

1996-97 Internal Interest Liability is 58500 Crores.

However, the basic question is whether the country can sustain mechanisation? **According to a study by Institution of Economic Growth (Chairman Dr. Man Mohan Singh) to replace Animal Energy, our Country would require.**

- 20 Million tractors
- $ 20 billion worth of petroleum products for these tractors.
  (Present import of oil is about $ 7.0 billion).
- Investment required for such number of tractors would be Rs. 5 Lacs Crores.

(Rs. 50 Kharab).

- Bullock carts are estimated to be nearly 14.5 million and are providing employment to about 30 million people.

All these would be rendered jobless if bullocks would go to be slaughtered.

India, a tropical country has fast depleting water resources, while mechanised farming (as well as the modern industrialism) consumes too much of water. According to the National water Resources Commission, Water resources of India were 74% in 1940 and came down in 1980, to 33% of what they had been in 1901, and by 2001 A.D. they will be just 14 as the trend goes.

EINSTEIN'S MESSAGE TO INDIA

Dr. Albert Einstein in his message to the people of India had said in 1948, "India should not go for mechanised farming. Soil in the U.S.A. has lost much of its fertility within a span of just three hundred years whereas India's soil retains its fertlility till today, even though farming has been going on, since past ten thousand years. Tractors ploughing and use of fertliisers will bring in loss of fertlility, eventually causing incalculable and irreparable harm to the country".

India, with 16% of the world population, has only 0.3% of the estimated total oil-reserves in the earth, while U.S.A. with only 5% of the population, is in a position to use 33% of the mineral oils power in the world. In India's agricultural operations, animal power constitues 66% manual labour, i.e. Manpower 20% and fossiled resources 14%. Replacing all animal power with oil-energy (and that resulting in the minimum use of manual power as the logical consequence) will entail colosol amount of fund as even today India has to spend over Rs. 3500/- crore annually for oil imports and with trade deficits occuring annually to the tune of more than Rs. 7000/- crores and debt-service burden taking away 30% of the export earnings.

With the discovery of Gobar-gas, India's cattle, (besides giving their usual draught-power) are capable of supplying gas energy on mass scale India's total dung output is estimated at 980 M. Tonnes. If harnessed, can yield 35,260 Metric Cubic feet of gas-sufficient for the needs of 88 Million families.

Mr. Jimmy Carter, the former U.S.A. president exclaimed, as he saw a gobar-gas plant in India, "Oh, it is a perennial source of energy"

FOR A PEACEFUL AND STABLE LIFE ORDER

Modern Industrialism cannot survive with pollution and energy crisis. A healthy, peaceful and enduring order hinges on the right balance among man, animal and machine. That in practice means; Animal power should not be employed for the jobs that can be performed by man power; and machine power should not be used for a work that animal power can do. Machines

should be used for those jobs alone that cannot be done by man power and animal power.

This is the key to a stable and peaceful life order.

Smt. Indira Gandhi, the Late Prime Minister of India had, on the occassion of the International Conference of Energy at Nairobi in 1981 said, "In this jet age, people refer to bullock-carts as symbols of past, However, in India, animals provide more power than all our power houses, whose installed capacity is 22,000/- Mw. Replacing them would entail a further investment of 25-40 billion dollaras in electricity, over and above the loss to farm economy of manure and cheap fuel".

It is not a tragic irony that the above expression were not translated into action in Govt. Policy to ban slaughter of cow and bullocks? Our great Political Saint Vinobaji had to sacrifice his life by fasting upto death to stop the slaughter of Cow-Progeny.

The shortage of Bullocks availability for agriculture is continuosaly growing (Transport not included) —

Year	BULLOCKS AVAILABILITY	BULLOCKS REQUIREMENT	AVAILABILITY PERCENTAGE
1951	585 Lacs	1319 Lacs.	44%
1961	687 Lacs	1528 Lacs.	44%
1971	706 Lacs	1658 Lacs.	42%
1977	712 Lacs	1723 Lacs.	41%

The figure of avilability from 1961 includes exotic cross-breed bullocks, majority of which could not be conditioned to our traditional Agricultural Methods.

BULLOCK CART : KEY ROLE

Now let us talk about Rural Transport System. That the bullock cart plays a key role in transporting men and material within villages and from villages to villages and towns is today conceded even by those who talk of mechanisation of rural transport seeing our roads. Thanks to the oil crisis and the unprecedented fuel shortages faces by the world, it increasingly being recognised that there is no other mode of cheaper transport to replace the bullock-cart in the near future. Lacs of villages are dependent on the bull • cart for their daily needs. In spite of the development of a wide network of rail and road transport in the country, considerable rural areas still depend on the bullock cart for both passenger and goods transport.

The bullock cart is a rural institution and it will be futile to think of replacing it in the foreseable future. In an age where increasing importance is being given to ecological balance and elimination of pollution, the bullock

cart has it's own part to play and it makes hardly any sense to upset this balance.

THE BULLOCK CART

On a rough estimate, there are some 15 million bullock carts in the country, which in terms of investment is equivalent to Rs. 4500/- crores - just Rs. 1500/- crores less than the government's investment in the railways in the last 10 years. 41 billion tonne kilometers of goods i.e. 60% of the average farm products to market (tansportation of goods) are carried by bullock carts every year, as against 180 billion tonne kilometers carried by railways ad 80 billion tonne kilometers carried by road transport. Directly and indirectly, the bullock cart industry provides employment to 20 million people against 6 million by the road transport industry and 1.4. million by railway.

SECURED PLACE IN INDIA'S TRANSPORT SYSTEM

Although many would believe that the bullock cart is on its way to extinction, it is not only increasing in the number (One million every 5 years) but also proving itself as the cheapest form of transport for short hauls. A recent case study of 5 mandis in different states to assess the role of bullock carts and trucks in rural transport, conducted by the programme evaluation organisation of the planning commission, some time back, throws interesting light on the situation. It says, "the cart continues to occupy a indispensable place in the rural economy. While carts have lost much ground against trucks in the mandis or market centres, they have increased in number in the villages and are not handling any lower volume of traffic than 10 years back". In order to understand this phenomenon, one has to look into the set-up of our rural economy and take into account the advantage of the cart has over the other modes of transport.

The Programme Evaluation Organisation's study further observed that "Carts handle 50 to 96% of the road-borne inward traffic at the mandis, though they do not have much scope for handling outward traffic. Their main work lies in the mandi itself, in the transport of goods from the shops to godowns, mills, railway stations and similar points. The cart is not a competitor but complementary to railways and trucks".

COW PROTECTION REMAINS A FAR CRY

Even after more than five decades of independence and in the face of above mentiond facts, the Govt. of India is continuing to stick fast to the policy of cattle-slaughter initiated under the British rule. This is inexplainable except for the inscrutable nature of the modern state craft. No doubt, there are laws for cattle-preservation in the provinces but they provide ample scope for free and want on slaughter. Moreover, the Government of India has added a new dimension to already on going cattle-slaughter by introducing meat export

programme and promoting mechanised slaughter houses, a thing that never took place in the entire history of a land that has preached love and compassion all through the ages. As the farm-economy of India has been put to face the petrodollar trade, the Indian cattle as decribed earlier are on their mass exodus towards the abattoirs, and a number of marvellous breeds have disappeared and remaining other also heading towards the same fate. How can the poor cattle manage to survive, even though they after slaughter have become several times less profitable for dollars than when they are alive for farm needs?

FIGURES OF MEAT & LEATHER EXPORTED

Year	Meat (Rs.)	Leather (Rs.)
1951	Nil	Nil
1952	1 crore	28 crores
1981	56 crores	390 crores
1991	140 crores	2600 crores
1992	231 crores	3128 crores
1995	616 crores	data not available

NUMBER OF CATTLE SLAUGHTERED

1901 to 1949 (50 years)	:	3 crores
1964 to 1972 (8 years)	:	2.3 crores
1978 (each year)	:	1 crore
1992 (each year)	:	Estimated 3 crores (Legally or illegally)

Not withstanding the constraints and injustices the Indian cattle have been kept under, their contribution to the national income is amazingly remarkable. Contributions from cattle wealth in terms of money amounts to be 205000/- million whereas big and medium industries jointly contribute to Rs. 1,78,060 million. Draught power available from them has been estimated by Mr. Donals Clauses, an American Engineer, to be equivalent to 28.2 million barrels of oil. India's animal power provides energy equivalent of 30000 Megawatts with no particular huge investments.

India has, in principal adopted a socialistic pattern. Indian Govt. encourages preservation and promotion of the rights of Labour Community. Labour leaders shout to protect and promote labour demands, which are multiplying for increase in wages, pension, gratuity, bonus, priviledge leaves, sick and maternity leaves and other allowances.

INHUMAN ATTITUDE

Unfortunately, there are no such advocates for the rights of our voiceless workers, the cows, the bullocks and other animals who toil till their last breath

without rest or maternity leave or sick or priviledge leaves or without striking work, for the prosperity of our nation and the well being of our urban and rural population. Cows are exploited for continuous flow of milk by forced releated claving by artificial means or injecting oxytocin in their uddar or Phhoka which in a short time makes them totally barren and incapable to give milk. The bullocks are goaded with leather whip or with sharp edged iron rod till blood comes out of their neck wounded or legs broken by overloading them. When found useless milk or unfit for draught purpose these poor animals are thrown on roads to die of starvation or sold to butchers. It is here that *Gośālās* perform their duty. They rescue such animals, treat them medically and try to restore them to normal health to breath their last in shelter and peace. This is our human touch to them. *Gośālā* movement has currently rescued thousands of cows, calfs and bullocks, mostly from illegal slaughteress and saved our national wealth. Even such animals fed on grass & gaibage give upto 3650 kg. of dung in a year which can produce 80-100 tons of compost fertiliser through Nadep process and give following ingredients that will save crores of rupees of national exchange spent on import of dung, compost and fertilisers and also rejuvenite our earth :

			Cost based on subsiding rate of chemical Fertilizers
Nitrogen	800	Kgs.	Rs. 4,026.00
Phosphorus	560	Kgs.	Rs. 3,500.00
Potassium	1040	Kgs.	Rs. 2,800.00
Micro Nutrition	67000	Kgs.	Rs. 7,760.00
Total			Rs. 17,885.00

A master plan should be chalked out to transform the draft and bio-gas energy and organic manure for constructive use to develop renewable sources of our energy to preserve and protect our environment and save us from foreign dependence for chemical fertilisers, insecticides and petro products.

It is, therefore, our duty to preserve and protect our cows, bullocks and other animals. This calls for the creation of a National Project to establish a chain of *Gośālās* & *Pinjārāpoles* or *Gosadans* to preserve these valuable lives by creating 'Natinal Fund for Care of Animals', desirable by government allocations in the form of a cess of atleast five paise or more per kg. of milk produced and sold by wholesale producers and milk societies and similarly on sale of Agricultural products at Agricultural marketing yards to provide shelter, care and food, till natural death in lieu of pension, gratuaty, bonus or provident fund benefits to the voiceless workers whose contribution to national health and wealth is enormously anvaluable. Wide executive power should be given to the National Executive Committee nominated for this project preferably through Animal Welfare Board of India and active, constructive and devoted leaders

of *Gośāla* Movement.

COW PROTECTION - EVOLUTION AS A VALUE

While other nations opted for speed by choosing horse as their chief companion. India in her hoary past preferred for stability and balanced order by choosing cow as life-companion, modus vivendi elmodus operandi, since then cow has been synonymous with India's Life order. And the culture of a nation is truly rooted in its agriculture. Thus protection of cow meaning *Gośālā*s Movement has verified the protection of India's life order and heritage.

SACRED COW TRULY SACRED?

Many people brought up under Western Influence refer to India's cows as "sacred" cow. But this showes only their ignorance about the condition of life in India.

Mr. Philip Staph writes in the January-1972, issue of the "Prabudha Bharat" (प्रबुद्ध भारत) a journal of the Ram Krishna Mission :

"We Americans are prone to call countries with civilisation far older than our as emerging countries. We are quick to speak disdainfully of India's cow worship, never bothering to enquire into the role which cow played in India's religion and economy, giving not only milk, but dung for manuring and fuel. "Sacred" as Gandhi said, because the cow has been a useful and gentle companion for centuries. Nor do most Americans stop to think how we cuddle and pamper our dogs. Feeding them coupiously, so the television advertisement are devoted to touting tempting dog foods. Nor would any American dream of eating the flesh of a dog".

Monier Williams, whose work on the Veda is very famous , writes in his book "One Hinduism" —

"Fortunately for the people of India, Cows, which give milk, the only animal-protein and ghee, and bullocks which plough their land. were declared "Sacred" in the very beginning. Had it not been done, cows and bullocks would have disappeared during the famines (i.e. they would have been eaten up by the starving people-ed) what is found today as blind faith, was in fact a far-sighted wisdom".

PARTIAL BAN ON CATTLE SLAUGHTER IS MEANINGLESS

A question commonly asked, "But why not slaughter the old and decrepit cattle?' Because this is simply not practicable in the Indian conditions. Meat from the old animals is not fit for man's consumption. Therefore young and useful alone are slaughtered, of courses under the plea of being old and useless. In west, cow is a dual purpose animal i.e. for supplying beef and milk. So in their case to trouble arises in slaughter. In India, however, cow is a far-animal for milk and draught. Cattle in India were never meant for supplying meat. If this objective is added to cattle farming, all restriction over their slaughter

must naturally go. There can be no mid-way between no ban and total ban.

Cattle-slaughter goes on unabled, even when the number of bullocks is just half of our requirements.

Independence has no meaning if we fail to save cow. It will have to be admitted then that we have lost our freedom and its aroma is gone-if cow-protection does not take place.

For this purpose, *Gośālā* movement, in India is the question of life and death as said by Vinobaji.

WHY GOSHALA MOVEMENT ?

1. *Gośālā* movement is a patriotic movement to free the nation from the clutches or Foreign economic dependence and to provide cheap and nutritious food, fuel, energy, manure and safeguard our environment.
2. It's aim is to preserve, protect and develope cow and bullocks for the prosperity of the country.
3. *Gośālā* movement is the commond of India's Nonviolent culture & glory.
4. *Gośālā* movement is to implement directive principals of non-violence of our constitutions.

Govt. of India is bound to preserve it.

TWO DEMANDS

1. In India's a pre-dominantly agricultural country slaughter of cow and bullocks of any age-group must be prohibited by a legislation as a step preliminary to all animal slaughter.
2. All meat export from this country be stopped.
3. Govt. Should sponsor a National welfare fund for care of cows and Animals created with contribution form Govt. and milk producers (Agriculture products) moreever.

IT IS INDIA'S OWN SOCIALISM

On account of experiments carried through for millennia in India's civilisation, cows and bullocks have been assigned a place in human family. It is a marvellous example of relationship between man and animal. In India's socialism cow-species gained a part in the family and they are to be given. (Out of gratitude) for their life-long services, protection and loving care till their natural death

— VINOBA BHAVE

"My ambition is no less than to see the principle of the Cow-protection established throughout the world. But that requires that I should set my own house thoroughly in order first". **— MAHATMA GANDHI**

Received - 10.5.98

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

देव निर्मित (वोद्वेथूभे) जैन स्तूप

■ कुन्दनलाल जैन *

'तित्थयर' के अप्रैल - सितम्बर 1999 के महावीर विशेषांक में पृ. 109 - 121 तक तथा ऋषभ सौरभ 1992 के पृ. 58 पर आदरणीय श्री डा. रमेशचन्दजी का विस्तृत आलेख **'मथुरा के जैन साक्ष्य'** शीर्षक से पढ़ने को मिला। लेख आधिकारिक प्रमाणों सहित अति उत्तम है तथा शोध परक एवं उच्च कोटि का है, नये शोधार्थियों को पर्याप्त जानकारियों से भरा पड़ा है पर एक जरा सी घुंडी ने दो ऐतिहासिक संस्कृतियों के ज्ञान में आमूल चूल परिवर्तन सा कर दिया है, जिससे पीड़ा हुई है और 'उद्वहुरिववामन:' की उक्ति को चरितार्थ कर रहा हूँ। हो सकता है यह Slip of Pen हो या अनजाने ही द् में मिश्रित 'व्' पर घुंडी चढ़ गई हो और वह 'वोद्वे' शब्द 'बोद्धे' में परिवर्तित हो गया हो जो प्राचीन जैन स्तूप को प्राचीन बौद्ध स्तूप की सिद्धि में महान् ऐतिहासिक और पुरातात्विक भ्रान्ति का कारण बना, जो नहीं होना चाहिए था। इससे भावी शोधार्थी भ्रान्ति में फंस जायगें और गलत निर्णय अपनी भावी पीढ़ी को छोड़ जावेगें।

सच्चाई यह है कि यह स्तूप वोद्वे (VODVE) नाम से ही प्राचीन पुराविदों में, (भले ही वे भारतीय हों या पाश्चात्य विद्वान) विख्यात रहा है और प्राचीन ब्राह्मी की अल्पज्ञतावश वे इस 'वोद्वे' शब्द का खुलासा नहीं कर सके और वोद्वे - वोद्वे ही प्रचलित रहा और इसके खुलासा समाधान की ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया और इसके प्राचीन लिपिकाल तथा थूभे शब्द से ही संतुष्ट होते रहे।

चूंकि यह जैन स्तूप है अत: इसकी प्राचीनता तथा अन्य जैन जानकारियों के प्रचार - प्रसार हेतु स्व. डा. कामता प्रसादजी ने अपनी 'अहिंसा वाणी' शीर्षक शोध पत्रिका के महावीर विशेषांक के लिए स्व. डा. के. डी. वाजपेयी सा. से इस स्तूप से संबंधित अच्छा शोध परक लेख मांगा तो स्व. संपादक महोदय ने उसे सहर्ष प्रकाशित कर दिया यह बहुत पुरानी बात है। मैं चूंकि उपर्युक्त दोनों ही विद्वानों की शोधपरक प्रवृत्तियों से भली भांति परिचित रहा हूँ तथा दोनों के साक्षात् दर्शन भी किए हैं। मैं वाजपेयी सा. के बौद्वे शब्द की व्युत्पत्ति को जानने के लिए अति व्याकुल रहा अत: मैंने दिल्ली के तथा बाहर के मूर्धन्य पुरातत्वविदों और खासकर प्राचीन ब्राह्मीलिपि विशेषज्ञों से संपर्क साधा और **'बोद्वे'** शब्द के विषय में चर्चा एवं विशद विचार विमर्श किया पर सभी का कहना हुआ कि प्रतिमा लेख की मूल छाप (फोटो प्रति) देखे बिना कोई निश्चित निर्णय नहीं किया जा सकता। फलत: वाजपेयी सा. के लेख की फोटो प्रतिलिपि मंगवाई उसमें वह छाप भी विद्यमान थी। मैंने आनन फानन उस छाप की फोटो प्रति सभी विद्वानों को भेजी। फलत: कुछ तो मौन रह गये पर डा. कृष्ण देवजी तथा श्री बहादुरचंद्रजी छाबडा प्रभृति मूर्धन्य प्राचीन ब्राह्मी लिपि विशेषज्ञों ने बताया कि 'वोद्वे' जैसा शब्द कोई स्पष्ट नहीं पढ़ा जाता अपितु 'द्वे' बिल्कुल स्पष्ट और साफ पढ़ा जाता है तथा 'वो' का झुकाव प्रतिमा की तरफ पढ़ा जाता है। अत: स्पष्ट पाठ 'प्रतिमावो द्वे थूभे' प्रतीत होता है। मुझे कुछ शान्ति हुई, कुछ दिनों बाद अचानक स्व. श्री उमाकान्त प्रेमानन्द शाह का आलेख कहीं पढने को मिल गया और उसमें उपर्युक्त पाठ देखकर पूर्ण शान्ति प्राप्त हुई। इस पर सारे नोट्स जो अब तक छितरे - बिखरे पड़े थे उन्हें भली भांति संभालकर इस 'वोद्वे' पर लेख लिखकर पाठकों को आश्चर्य चकित करना चाहता था पर दुर्भाग्य कि अस्वस्थता वश वह कार्य रूका सो रूका ही रहा। अब श्री शर्मा जी का उससे संबंधित लेख देखा तो भूचाल सा दिमाग में आया, मैंने शर्माजी को व्यक्तिगत पत्र भी लिखा। संभवत: इस पर अजमेर संगोष्ठी में भी चर्चा हुई होगी और स्मारिका छपने की तैयारी हो रही होगी अत: पू. उपाध्याय ज्ञानसागरजी महाराज को यथार्थ स्थिति से अवगत कराया साथ ही संशय निवारण हेतु 'अर्हत् वचन' पत्रिका को यह लेख भेज रहा हूँ।

यह समस्या जब से मथुरा के कंकाली टीले से खुदाई में प्राप्त लेख से अब तक 'वोद्वे'

रूप में ही प्रचलित चली आ रही है। श्री शर्माजी को लगा कि इतनी बड़ी समस्या का चमत्कारिक समाधान एक जरा ही घुंडी के परिवर्धन से बड़ी सहजता और सरलता से संभव है और इसमें 'न सांप मरे और न लाठी टूटे' की उक्ति भली भांति चरितार्थ हो सकती है। अतः उन्होंने 'बोद्वे' के 'द्वे' में मिश्रित आटे 'व' के ऊपर एक और चमत्कारिक घुंडी चढ़ाकर 'ट' 'ध' में परिवर्तित कर दिया और बड़ी सरलता और सहजता से पूरा शब्द 'बोद्वे' (VODVE) न रहकर 'वोद्धे' बन गया, रही बात 'व' और 'ब' की सो प्राचीन लिपिकारों में इन दोनों अक्षरों में कोई विशेष अन्तर नहीं माना जाता रहा फलतः 'वोद्वे' शब्द 'बोद्धे' में बदल जाने से किसी को कोई आपत्ति न रहेगी भले ही एक संस्कृति का अभ्युदय और दूसरी संस्कृति को क्षति पहुंचती रहे पर पूरे प्रतिमा लेख में छिपे आंतरिक जैन तथ्यों के प्रति श्री शर्मा जी की दृष्टि नहीं पहुंची।

नंद्यावर्त (डा. के.डी. वाजपेयी का पाठ मुनिसुव्रतस) श्राविका, गण, गच्छ शाखा आदि जैन अन्तर्साक्ष्यों के प्रति शर्माजी की दृष्टि ओझल ही रही, और यह जैन स्तूप बौद्ध स्तूप में निर्णायक रूप से घोषित कर दिया गया। इस भूल को विगत सात वर्षों में भी संशोधन नहीं किया जा सका।

इन गण-गच्छों के प्रचलन का बहुत पुराना जैन इतिहास विद्यमान है आचार्य अहर्द्बली ने एक बार पुण्ड्रवर्धन पुर में समस्त श्रमण संघ के मुनियों के सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें सभी *श्रमण सम्मिलित हुए, सम्मेलन के प्रारंभ से पूर्व आचार्य अर्हद्बलि ने पूछा सभी मुनिजन आ गये हैं?* तो उत्तर मिला हम सब अपने गणों गच्छों सहित उपस्थित हो गये हैं। तब आचार्य श्री को आभास हुआ कि अब जैन धर्म विभिन्न वर्गों में ही बंटकर रह सकेगा अतः उन्होंने जो जहां से आये थे उनकी तदनुरूप संज्ञाए सुनिश्चित कर दी जैसे जो गुहाओं से आये थे उन्हें कुछ को 'नंदि' तथा कुछ को 'वीर' अंत संज्ञा दे दी, जो अशोक वाटिका से पधारे थे उनमें से कुछ को 'अपराजित' और कुछ को 'देव' अंत संज्ञा दे दी, जो पंच स्तूप से आये थे उन्हें पंचस्तूपान्वयी कहा उनमें से कुछ को 'सेन' और कुछ को 'भद्र' अंत संज्ञा दे दी इसी तरह विभिन्न संघों, गणों गच्छों और शाखाओं की स्थापना सुनिश्चित हो गई। विस्तार के लिए इन्द्रनंदी आचार्य के 'श्रुतावतार' ग्रंथ में 90 से 102 श्लोकों को देखा जा सकता है।

एक शब्द 'देव निर्मित' है जो हर तीर्थंकर के समोशरण की रचना देवाधिपति इन्द्र ही करता है अतः यह देव निर्मित कहलाया। भगवान पार्श्वनाथ के समवशरण की मथुरा में रचना में हुई हो और उसका ही अंश रूप यह स्तूप बाकी बचा रह गया हो और यह देवनिर्मित कहलाया जो सोने व रत्नों का देवों ने बनाया था। जिन्होंने इसका जीर्णोद्धार कराया उन तक को भी इसकी प्राचीनता का ज्ञान नहीं था, वप्पभट्टसूरि ने भी मथुरा के जैन स्तूपों की चर्चा की है। इस तरह अकबर के शासन काल तक यहाँ जैन स्तूप बनते रहे। अकबर की टकसाल के प्रमुख अधिकारी कोलभटानिया (अलीगढ़) के साहु टोडर जब जम्बूस्वामी की निर्वाण स्थली के दर्शनार्थ पधारे तो यहाँ के दस-बीस नहीं, अपितु इन से अधिक जैन स्तूपों की जीर्ण दशा देखकर उन्हें बड़ा कष्ट हुआ और उन्होंने उन सभी जीर्ण-शीर्ण स्तूपों का जीर्णोद्धार कराया तथा जैन पौराणिक कथा के अनुरूप कुल 514 जैन स्तूपों का निर्माण कराया। विस्तार के लिये अर्हत् वचन में प्रकाशित मेरा पुरस्कृत लेख देखें। यदि यह बौद्ध स्तूप है तो फिर इसे जैन साक्ष्यों में सम्मिलित कर लेने का भी कुछ तो कारण होना चाहिये।

इस तरह 'प्रतिमावो द्वे थूपे निर्मिते प्र.' (तिष्ठिताः) से ऐसा प्रतीत होता है कि दो जैन स्तूपों में दो जैन प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हुई हों, ऐसा मेरा अनुमान है कि इनके अतिरिक्त तीन स्तूप और रहे होंगे जिन्हें कराल काल ने कबलित कर डाला अन्यथा यह 'पंच स्तूप' कहलाता रहा हो। इन सब तर्कों और अकाट्य प्रमाणों से श्री शर्माजी सहमत होंगे और उस एक छोटी सी घुंडी का व्यामोह त्याग कर पिछले सौ वर्षों से चली आ रही 'वोद्वे' की कठिन समस्या के सरल समाधान 'बोद्धे' ढूंढ लेने के आग्रह से विमुक्त होकर प्राचीन इतिहास और पुरातत्व को भ्रष्ट होने से बचा लेंगे।

* श्रुति कुटीर, 2 / 68, विश्वास रोड, युधिष्ठिर गली, शाहदरा,
दिल्ली - 110 032 फोन : 2412650

तित्थयर (अप्रैल – सितम्बर 1999) में पृ. 114 – 115 पर प्रकाशित डॉ. रमेशचन्द शर्मा के लेख 'मथुरा के जैन साक्ष्य' का अंश

एक ही मूल स्तूप था। कालान्तर में उनकी संख्या 5 हुई। तदन्तर छोटे - मोटे 527 स्तूप बन गये जिनकी पूजा 17वीं शताब्दी तक होती रही। 1583 ई. में साहु टोडर द्वारा 514 स्तूपों की प्रतिष्ठा की गई। इसके पूर्व आचार्य बप्पभट्टिसूरि 9वीं शती में ही एक पार्श्व जिनालय स्थापित कर चुके थे और एक महावीर बिम्ब भी भेजा था। सब पुण्य कार्य देवनिर्मित स्तूप (कंकाल) या चौरासी के आस - पास ही सम्पन्न हुए होंगे।

प्राचीनतम स्थान : साहित्य तथा अनुश्रुतियों के आधार पर इस स्थल की प्राचीनता सिद्ध करना संभव नहीं है। किन्तु पुरातत्व ने इस दिशा में हमारा मार्गदर्शन किया है। उत्खनन से प्राप्त कुषाण कालीन एक मूर्ति की पीठ (लखनऊ जे. 20) पर उत्कीर्ण लेख में इसे देव निर्मित बौद्ध स्तूप बताया है, इस महत्त्वपूर्ण मूर्तिलेख को उद्धृत करना आवश्यक है :

पंक्ति 1 . सं. 9 व 4 दि 20 एतस्यां पूर्व्वायां कोटटिये गणे वैरायां शाखाय।

पंक्ति 2 ...को अय वृधहस्ति अरहतो नन्दि (अ) वर्तस प्रतिमं निर्वर्तथति।

पंक्ति 3 नीचे ....भार्य्यये श्राविकाये (दिनाये) दानं प्रतिमा **बौद्धे** थूपे देव निर्मित प्र ....॥

अर्थात् वर्ष 79 की वर्षो ऋतु के चतुर्थ मास के बीसवें दिन कोटिय गण की वैर शाखा के आचार्य वृद्धहस्ति ने अर्हत् नद्यावर्त की प्रतिमा का निर्माण कराया और उन्हीं के आदेश से भार्या श्राविका दिना द्वारा यह प्रतिमा देव निर्मित **बौद्ध स्तूप** में दान स्वरूप प्रतिष्ठापित हुई।

प्रो. कृष्णदत्त बाजपेयी नन्द्यावर्त के स्थान पर मुनिसुव्रतस पढ़ते हैं। विचार - विमर्श में डॉ. उमाकान्त प्रेमानन्द शाह ने मत व्यक्त किया कि लेख को 'प्रतिमावो द्वे थूपे निर्मिते' पढ़ा जाना चाहिये। तदनुसार प्रतिमा तथा दो स्तूपों का निर्माण हुआ। कुषाण संवत् में इन्हें उत्कीर्ण मानने पर मूर्ति का समय 157 ई. आ जाता है। यदि यह काल गणना किसी अन्य संवत् में है तो मूर्ति और प्राचीन मानी जा सकती है। विद्वानों का अनुमान है कि ''इसे देवनिर्मित बताने का तात्पर्य यह है कि पहली - दूसरी शताब्दी ई. में ही यह स्थान इतना प्राचीन माना जाता था कि इसके निर्माण का इतिहास विस्मृत हो चुका था। अतः इसें देवताओं की कृति माना जाने लगा।'' उपर्युक्त अनेक साहित्यिक सन्दर्भों के प्रकाश में इस निष्कर्ष पर सरलता से पहुँचा जा सकता है कि मूर्ति के अभिलेख में वर्णित देवनिर्मित स्तूप वही है जिसे देवी कुबेरा ने स्थापित किया था।

तीर्थकल्प ग्रन्थ में यह भी उल्लेख है कि पार्श्वनाथजी के समय मूल सुवर्ण स्तूप पर ईंटों की परिधि बनवाई गई तथा बाहर पत्थर का एक मन्दिर बना। डॉ. उमाकान्त शाह का मत है कि देवनिर्मित स्तूप पार्श्वनाथ जिन की स्मृति में ही मूलतः बना होगा। जिनप्रभसूरि ने भ्रमवश सुपार्श्व लिखा है।कंकाली से प्राप्त अवशेषों में पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ ही अधिक हैं। किन्तु हमें यह मत मान्य नहीं है कि क्योंकि अन्य लेखकों ने भी इसे सुपार्श्व का स्तूप माना है अतः सभी भ्रान्त नहीं हो सकते। पार्श्वनाथजी महावीरजी के पूर्ववर्ती थे और उनका समय 900 ई. पूर्व आसपास का माना जाता है। जिस देवनिर्मित स्तूप का पुनःनिर्माण 900 ई. से पूर्व के आसपास हुआ हो वो कम से कम 100 या 200 वर्ष पुराना अवश्य रहा होगा। इस प्रकार साहित्य तथा पुरातत्व के समन्वित अध्ययन का सारांश यह है कि काली टीले पर स्थित देव निर्मित स्तूप की रचना का आरम्भ किसी न किसी रूप में अब से लगभग 3000 वर्ष पहले हो चुका था और यथासमय उसके स्वरूप का परिवर्तन होता रहा। अतः निश्चय ही मथुरा का देव निर्मित स्तूप भारत का प्राचीनतम स्मारक था। इस तथ्य से देशी तथा विदेशी सभी विद्वानों ने सहमति प्रकट की है। अतः भारतीय पुरातत्व में कंकाली टीले के जैन स्तूप का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

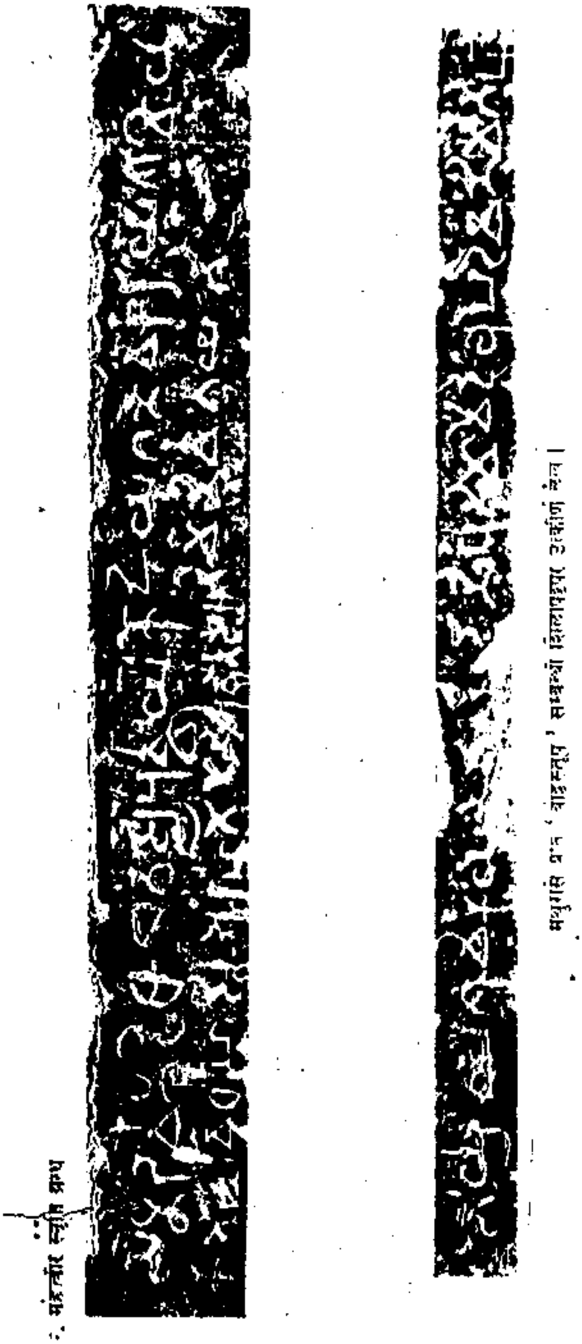

लेख में चर्चित शिलालेख का चित्र

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapītha, Indore

JAINA REFERENCES NOT INCLUDED IN KHAJURAHO FESTIVAL

■ A. P. Jain *

The thousand year celebrations at Kkajuraho have begun on 6th March 99. The millennium festival which will go on till 25th March 2000 is an appreciation of this art form of India. But the Jaina art and its asthetic values to appreciate such a glorious culture have not been included due to inactive interest of our central / state Jaina leadership and socio cultural unawareness.

The world heritage of Khajuraho has made a significant contribution to Jaina religious art of our country. Some magnificiant Jaina temples here are dedicated to Jaina faith. The Ādinātha temple is one of them. These Jaina temples have become world famous for their erotic sculpture. The exuberant details in these Jaina temples which speak of the vitality and prosperity of the times. Out of 85 temples only 21 are standing. Many of the houses in nearby villages are partly built with stones which would have belonged to this Jaina ancient site. You may well imagine the large numbers of valuable Jaina images which must have been taken from here over the years.

As the Govt. is celebrating a thousand years of Khajuraho, the Jaina art and its aesthetic value should not be neglected as there Jaina temples provide a window of one of the most splendid temples sites in the history of the world.

Sahu Ramesh Chand Jain of Delhi attended this festival at inugural day to introduce a book on 'Khajuraho', but he has not uttered a single word in the glory of Jaina heritage. He said nothing about the neglection of Jaina art in the millennium. It is shameful to our *Jaina Samāja*. For active participation in millennium, no significant contribution has been come out by local management.

It is symbol of our so called, true dedication to our Jaina heritage and culture.

* N - 14, Chetak Puri,
Gwalior - 474 009

अन्तर्राष्ट्रीय भगवान ऋषभदेव निर्वाण महामहोत्सव एवं ऋषभदेव जैन मेला
लाल किला मैदान, दिल्ली - 4 फरवरी से 10 फरवरी 2000
में अवश्य भाग लीजिये।

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर में सुरक्षित तीर्थंकर पार्श्वनाथ की धातु प्रतिमा

■ नरेशकुमार पाठक *

भगवान पार्श्वनाथ को जैन धर्म का तेइसवाँ तीर्थंकर माना जाता है। वे काशीराज महाराज अश्वसेन के पुत्र थे, उनकी माता का नाम वामा था। ऐसा माना जाता है कि वे ईसापूर्व 817 में पैदा हुए थे और कुमारावस्था में ही तप ग्रहण कर लिया था। उन्हें देवदार (घव) वृक्ष के नीचे तपस्या करते हुए केवलज्ञान प्राप्त हुआ और शतायु होने के पश्चात ईसा पूर्व 718 में उन्होंने सम्मेदशिखर में रहते हुए निर्वाण प्राप्त किया। नाग उनका लांछन है। तीन, सात, नौ या ग्यारह फणावली युक्त नागराज सदैव उनके सिर के ऊपर छाया किये रहते हैं। भगवान पार्श्वनाथ के यक्ष का नाम धर्मेन्द्र और यक्षिणी का नाम पद्मावती है।

यहाँ चर्चित प्रतिमा केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर में बनारस (उत्तरप्रदेश) से क्रय की गई थी। तीर्थंकर पार्श्वनाथ पद्मासन में बैठे हुए हैं। सिर के ऊपर सात फण की नाग मौली है। लम्बे कर्ण तथा सौम्य रूप हैं। आँख व मुख अस्पष्ट हैं। आसन के पीछे का भाग व बायाँ पैर टूटा हुआ है। ताम्बे की धातु से निर्मित 4 x 2.5 x 8 से.मी. आकार की यह प्रतिमा लगभग 16वीं शताब्दी की मध्यकालीन कला का प्रतिनिधित्व करती है।

* संग्रहाध्यक्ष - केन्द्रीय संग्रहालय,
आगरा - मुम्बई रोड़, इन्दौर

राष्ट्र की धडकनों की अभिव्यक्ति

हिन्दी का प्रमुख राष्ट्रीय दैनिक

नवभारत टाइम्स

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

तीर्थ क्षेत्र, विद्यालय आदि में लगाने योग्य पौधे

□ सुरेश जैन मारौरा *

तीर्थ क्षेत्र, धार्मिक संस्थाओं, विद्यालय, शिक्षण - प्रशिक्षण संस्थाओं के आस - पास जहाँ सिंचाई उपलब्ध हो या न भी हो, वहाँ निम्न प्रकार के फल वृक्ष, शोभायमान पौधे एवं पुष्प लगाकर मनमोहक दृश्य त्पन्न कर सकते हैं, साथ ही पर्यावरण, वन उद्यानिकी एवं प्रक्षेत्र वानिकी की योजनाओं में क्रियान्वयन में सहयोग कर सकते हैं। वृक्षों का विभाजन आवश्यकता एवं कार्यरूपता के आधार पर वैज्ञानिकों ने कई प्रकार से किया है। तीर्थ क्षत्रों एवं धार्मिक न्यासों पर इस प्रकार के पौधे लगाना उचित होगा। इन वृक्षों के नीचे तीर्थंकरों को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था, दीक्षा कल्याणक, पंच कल्याणक, ननंदन वन और भक्तामर वन में भी इनका उल्लेख पाया जाता है।

ऊँचे बढ़ने वाले एवं अधिक समय तक जीवित रहने वाले (50 वर्ष से अधिक उम्र वाले) जैसे - आम, आंवला, बहेड़ा, वटवृक्ष, शालवृक्ष, देवदार, सिरस, तेंदू, पीपल आदि इन पौधों को 10 मीटर की दूरी पर 3 x 3 x 3 फुट आकार के गड्ढे खोदकर उसमें 50 किलो गोबर की सड़ी हुई खाद तथा 300 ग्राम नीम की खली भरकर जुलाई - अगस्त में पौधे लगायें। आम, कटहल, आंवला को सिंचाई एवं विशेष देखरेख की आवश्यकता होगा।

छोटे बढ़ने वाले एवं कम समय तक जीवित रहने वाले (25 से 40 वर्ष) जैसे नींबू, अमरूद, मौसम्मी, अनार, हरसिंगार (स्यारी), अशोक वृक्ष, चम्पक वृक्ष, बेर, सीताफल आदि इन पौधों को 6 मीटर की दूरी पर 2 x 2 x 2 फुट आकार के मई में गड्ढे खोदकर उसमें 30 किलो गोबर की सड़ी हुई खाद तथा 200 ग्राम नीम की खली भरकर जुलाई - अगस्त में पौधे लगायें। मौसम्मी, अनार,अशोक, चम्पक आदि वृक्षों को विशेष देखरेख की आवश्यकता होगी।

शोभायमान एवं मौसमी फूल - एक मौसम में समाप्त होने वाले मौसमी फूलों को एवं शोभायमान गमलों, लकड़ी की पेटियाँ, बांस की टोकरियों, क्यारियों में लगा सकते हैं। जैसे गेंदा, सूर्यमुखी, बालसम, जीनियां, क्रोटन, कोलियस, मोरपंखी, गुलाब आदि पौधों को रोग एवं कीड़ों से बचाने के लिये नीम की खली प्रत्येक गड्ढे में गड्ढे खोदते समय 100 से 300 ग्राम तक एवं वर्ष में दो बार गुडाई के समय 100 ग्राम प्रति गड्ढा दें तथा नवम्बर एवं फरवरी माह में (दो बार) नीम की तेल 20 मि.लि. 15 लीटर पानी के साथ मिलाकर छिड़काव करने से पौधे निरोग रहेंगे।

भगवान ऋषभदेव के शासन काल से अब तक वन, उद्यानों में इन वृक्षों का वर्णन मिलता है। सड़कों, राजमार्गों, जनमार्गों के किनारों पर वृक्षारोपण की परम्परा चली आ रही है। फल, फूल व छायादार वृक्षों का रोपण एक पुनीत कार्य माना जाता है। मुगल शासकों ने भी इसकी आवश्यकता को महसूस किया था।

वर्तमान युग की जनसंख्या में विस्फोटक गति से वृद्धि हो रही है और दूसरी ओर औद्योगिक विकास भी तीव्र गति से हो रहा है। इसकी तुलना में वृक्षारोपण का कार्य बहु कम क्षेत्र में हो रहा है। शहरों, बस्तियों एवं आवासीय उपनगरों में औसत के अनुसार वृक्षारोपण न कर पाने के कारण वातावरण तेजी से प्रदूषित होता जा रहा है। दूषित वातावरण से छुटकारा पाने हेतु योजनाकारों ने नये विकाशशील क्षेत्रों में सुन्दर हरित पट्टियां, मनमोहक वाटिकाओं, सड़क के किनारे पर वृक्षारोपण की ओर विशेष ध्यान देना शुरु कर दिया है। आदि पुराण, पद्म पुराण, पंचकल्याणक, विष्णु पुराण, अभिज्ञान शाकुन्तल, रामायण, महाभारत, गीता आदि के अध्ययन से यह बात एकदम स्पष्ट हो जाती है कि हमारे पूर्वजों को शोभाकारी पेड़ पौधों से कितना लगाव था, इनके अलावा साधु सन्तों को भी इन पौधों को अपनी कुटियों, कुंजों के समीप उगाने के प्रमाण मिलते हैं। मानव और पृथ्वी पर पाये जाने वाले सभी जीव - जन्तुओं को आक्सीजन की आवश्यकता होती है, जोकि उन्हें पेड़ - पौधों से उपलब्ध होती है। दूसरे शब्दों में यह कहना भी उचित है कि पेड़ - पौधे आक्सीजन बनाने के कारखाने हैं। आज के औद्योगीकरण के कारण वायु एवं जल प्रदूषित हो रहे हैं, जिसके कारण मानव

स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। अतः आज की भागदौड़ की थकावट और मानसिक अशान्ति को दूर करने में, स्वस्थ वातावरण निर्मित करने में, संस्कारों को बल देने में, प्राकृतिक चिकित्सा हेतु पेड़ पौधों एवं फूलों का विशिष्ट महत्व रहता है।

क्र.	नाम पौधे	किस्म	विवरण
1.	आम	दशहरी, लंगड़ा	छायादार, फलदार। अरहनाथ भगवान को आम्र वृक्ष के नीचे केवलज्ञान प्राप्त हुआ था।
2.	आंवला	कंचन, चकैया	औषधि में उपयोगी एवं फलदार
3.	बहेड़ा (अक्ष)	लोकल किस्म	औषधियों में उपयोगी। पुष्पदंत भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।
4.	कटहल	क्षेत्रानुसार	छायादार एवं फलदार
5.	वटवृक्ष	लोकल किस्म	छायादार। आदिनाथ भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था।
6.	पीपल	लोकल किस्म	औषधि , छायादार। अनन्तनाथ भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था।
7.	देवदार	लोक किस्म	औषधि , छायादार। अभिनन्दननाथ भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था।
8.	पलाश (छैला)	लोकल किस्म	इसके लाल फूलों का रंग निकाला जाता है, जलाऊ लकड़ी। श्रेयांसनाथ भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। भगवान बुद्ध को यह पसन्द था इसका विवरण ऋग्वेद में भी मिलता है।
9.	कदम्ब (कृष्ण वृक्ष)	लोकल किस्म	वासुपूज्य भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। गीता में कदम्ब के वृक्ष का संबंध भी कृष्ण से बताया है।
10.	वकुल (बकायन)	लोकल किस्म	नमिनाथ भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। नीले सुगंधित फूल आते हैं। गोल छाया रहती है। ग्रीष्म काल में अच्छा लगता है।
11.	शाल वृक्ष	लोकल किस्म	जलाऊ लकड़ी, औषधि। संभवनाथ, अभिनन्दन, पुष्पदंत, महावीर भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था।
12.	सिरस	लोकल किस्म	इमारती लकड़ी, चारा प्राप्त होता है।
13.	तेन्दू	लोकल किस्म	फल वृक्ष एवं इमारती लकड़ी। श्रेयांसनाथ भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था।
14.	अशोक वृक्ष	पेन्डुला या सीता अशोक	शोभायमान पौधा। मल्लिनाथ भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। ऋग्वेदों में कामदेव के साथ इसका वर्णन आया है।
15.	चम्पक वृक्ष	लोकल किस्म	पुष्प सुगंधयुक्त पौधा। मुनिसुव्रतनाथ भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था।
16.	हरसिंगार (स्यारी)	लोकल किस्म	इसके फूलों को केशर की जगह प्रयोग किया जाता है।
17.	नींबू, मौसम्मी, अमरूद, अनार	क्षेत्रानुसार उन्नत जातियाँ	फलदार पौधे, कम लागत में पैदा होकर अधिक उत्पादन देते हैं।
18.	गुलाब, क्रोटन, मोरपंखी, कोलियस	उन्नतशील वडेड	शोभायमान फूल एवं पंक्तियां

प्राप्त - 1.7.99

* वरिष्ठ उद्यान विकास अधिकारी,
जीवन सदन, सर्किट हाउस के पास, **शिवपुरी** (म.प्र.)

नियुक्ति एवं बधाइयाँ

जैन विद्याओं के अध्ययन एवं अनुसंधान को समर्पित प्रतिष्ठित संस्थान पार्श्वनाथ विद्यापीठ (पूर्व नाम - पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान), वाराणसी के प्रतिष्ठापूर्ण निदेशक पद पर नागपुर विश्वविद्यालय के पालि - प्राकृत विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष **प्रो. भागचन्द जैन 'भास्कर'** ने 16.7.99 से कार्य भार ग्रहण कर लिया है। प्रो. भास्कर बहुश्रुत विद्वान हैं जिनकी अनेकों कृतियाँ समाज को प्राप्त हो चुकी हैं। वे हिन्दी, संस्कृत एवं पालि तीन भाषाओं में डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त करने वाले विशिष्ट व्यक्तित्व हैं। ज्ञातव्य है कि यह स्थान प्रो. सागरमल जैन के पार्श्वनाथ विद्यापीठ से त्यागपत्र देने से रिक्त हुआ है।

प्रो. भास्कर को इस नियुक्ति पर कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की ओर से हार्दिक बधाई। उनका सम्पर्क सूत्र निम्न रहेगा -

डॉ. भागचन्द जैन 'भास्कर'
प्रोफेसर एवं निदेशक - पार्श्वनाथ विद्यापीठ,
आई.टी.आई रोड़, करौदी,
वाराणसी - 221005
फोन : 0542 - 316521, 318046

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा स्थापित गुजरात विद्यापीठ , अहमदाबाद के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय जैन विद्या अध्ययन केन्द्र, अहमदाबाद के मानद् निदेशक पद पर **डॉ. शेखरचन्द जैन** का मनोनयन हुआ है। तीर्थंकर वाणी के यशस्वी सम्पादक तथा भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय विद्वत् महासंघ के कार्याध्यक्ष डॉ. जैन ने गत 13 अगस्त 99 से अपना कार्यभार ग्रहण कर लिया है। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की ओर से हार्दिक बधाई।

प्रो. (डॉ.) विमलकुमार जैन, प्राध्यापक - वाणिज्य, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर को इस विश्वविदयालय के वाणिज्य संकाय का अध्यक्ष नियुक्त किया गया है। उनकी नियुक्ति पर सागर एवं अन्य विश्वविद्यालयों के वरिष्ठ प्राध्यापकों तथा बुद्धिजीवियों ने बधाई दी। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ निदेशक मण्डल की ओर से हार्दिक बधाई।

डॉ. **सुशीला सालगिया,** प्राचार्य - श्री क्लॉथ मार्केट कन्या विद्यालय, इन्दौर को देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर ने उनके शोध प्रबन्ध 'जैन विषय वस्तु से सम्बद्ध आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में सामाजिक चेतना' पर पीएच.डी. उपाधि से अलंकृत किया है। इस प्रबन्ध में आचार्य श्री विद्यासागर कृत मूक माटी महाकाव्य पर विशेष अध्ययन किया गया है।

ज्ञातव्य है कि श्रीमती सालगिया ने यह प्रबन्ध कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (शोध संस्थान) के अकादमिक सहयोग एवं मार्गदर्शन में तैयार किया है। आपके निर्देशक स्व. प्रो. पी.डी शर्मा एवं डा. दिलीप चौहान रहे। श्रीमती सालगिया को इस उपलब्धि पर ज्ञानपीठ परिवार की ओर से हार्दिक बधाई।

डॉ. (श्रीमती) नीलम जैन को दिगम्बर जैन महासमिति द्वारा रमादेवी महिला प्रतिभा पुरस्कार - 97 से इन्दौर में एवं आर्यिका रत्नमती पुरस्कार - 99 से दिल्ली में सम्मानित किया गया है। ज्ञातव्य है कि डॉ. नीलम जैन अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला संगठन की कार्याध्यक्ष एवं जैन महिलादर्श (लखनऊ) की सम्पादिका हैं। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की ओर से हार्दिक बधाई।

जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं (मान्य विश्वविद्यालय) ने दिनांक 28.10.99 को छतरपुर, महरौली, नई दिल्ली स्थित साधना केन्द्र में आयोजित दीक्षान्त समारोह में वर्ष 1998 में जैन विद्या एवं तुलनात्मक धर्म तथा दर्शन विभाग से एम.ए. की परीक्षा में सर्वोच्च स्थान पाने के लिये **कुमार अनेकान्त जैन** को स्वर्णपदक से अलंकृत किया है। आपने 1998 में ही यू.जी.सी. की नेट (NET) परीक्षा उत्तीर्ण की तथा वर्ष 1999 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली ने जैन दर्शन पर अनुसंधान कार्य करने हेतु राष्ट्रीय कनिष्ठ शोध अध्येता के रूप में पाँच वर्ष के लिये पाँच हजार रुपये प्रतिमाह की राष्ट्रीय छात्रवृत्तिहेतु चयन किया है। आप जैन विश्व भारती संस्थान (विश्वविद्यालय) में ही प्रो. दयानन्द भार्गव के निर्देशन में **'दार्शनिक समन्वय की दृष्टि : जैन नयवाद'** विषय पर पीएच.डी. उपाधि हेतु अध्ययनरत् हैं। बधाई!

श्रीमती अल्पना सर्राफ धर्मपत्नी श्री अशोक कुमार मोदी (ग्वालियर) को जीवाजी *विश्वविद्यालय, ग्वालियर* ने उनके शोध प्रबन्ध **'जैन धर्म एवं गीता में कर्म सिद्धान्त : एक समाजशास्त्रीय तुलनात्मक विवेचन'** पर पीएच.डी. की उपाधि प्रदान की। श्रीमती सर्राफ ने यह प्रबन्ध के.आर.जी. कालेज, ग्वालियर के समाज शास्त्र के प्राध्यापक एवं अध्यक्ष **डा. एम. पी. श्रीवास्तव** के निर्देशन में लिखा है, जिसमें जैन धर्म एवं गीता के अन्तर्गत धर्म, कर्म, योग तथा मोक्ष आदि के समाजशास्त्रीय पहलुओं पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है।

ज्ञातव्य है कि श्रीमती सर्राफ श्री वीरेन्द्रकुमारजी सर्राफ (चंदेरी) की सुपुत्री हैं एवं स्याद्वाद् ज्ञानगंगा की सहसम्पादिका भी हैं।

महाकवि ज्ञानसागर साहित्य पुरस्कार

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के अध्यक्ष **डॉ. रमेशचन्द जैन, बिजनौर** को परमपूज्य मुनि **श्री सुधासागरजी महाराज ससंघ** की उपस्थिति में दिनांक 26.10.99 को जैन भवन, अलवर के विशाल प्रांगण में **महाकवि ज्ञानसागर साहित्य पुरस्कार** से सम्मानित किया गया। इसके अन्तर्गत रु. 51,000=00 की सम्मान निधि तथा शाल, श्रीफल समर्पित किया गया।

इस अवसर पर डॉ. जैन द्वारा रचित सुधासागर हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोष का विमोचन भी हुआ।

'साहू अशोक जैन परिषद श्री पुरस्कार' श्री ताराचन्द्र प्रेमी को

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी (राज.) पर आयोजित अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद के हीरक जयंती अधिवेशन में 1997 का **'साहू अशोक जैन परिषद श्री पुरस्कार'** देश के प्रमुख समाजसेवी एवं गीतकार **श्री ताराचन्द्र जैन 'प्रेमी'** को प्रदान किया गया। परिषद के राष्ट्रीय अध्यक्ष साहू श्री रमेशचन्द जैन ने श्री प्रेमी जी को माल्यार्पण कर स्मृति चिन्ह एवं इक्यावन हजार रुपये का चेक भेंट किया। वरिष्ठ समाजसेवी श्री बलवंतराय जैन ने शाल औढ़ाकर सम्मानित किया। समाज के शीर्ष नेता स्व. साहू श्री अशोककुमार जैन ने समाजसेवा के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिये साहू जैन ट्रस्ट के अन्तर्गत इस पुरस्कार की स्थापना की थी।

गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी के जन्मदिवस पर तीर्थंकर ऋषभदेव संगोष्ठी

गणिनी प्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी के 66 वें जन्मदिवस पर दिनांक 25.10.99 को भगवान ऋषभदेव संगोष्ठी आयोजित की गई। इस अवसर पर वित्त राज्यमंत्री **श्री वी. धनंजयकुमार** मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। सभा की अध्यक्षता संघपति लाला महावीरप्रसाद जैन ने की।

संगोष्ठी को संबोधित करते हुए **गणिनी प्रमुख, आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी** ने कहा कि शरीर नश्वर है तथा आत्मा अजर-अमर है। इस आत्मा को परमात्मा बनाने के लिये ही हमें यह मनुष्य जन्म मिला है। आत्मा को परमात्मा बनाने के लिये धर्म, स्वाध्याय व परोपकार आवश्यक है। उन्होंने कहा कि भगवान ऋषभदेव ने हमें असि, मसि व कृषि की शिक्षा दी। जिसमें उन्होंने यह भी बताया कि शासक का कर्तव्य प्रजा को कष्ट न देते हुए कर वसूलना तथा प्रजा का दायित्व कुशल शासन चलाने के लिये ईमानदारी से कर चुकाना है।

केन्द्रीय वित्त राज्यमंत्री श्री वी. धनंजयकुमार ने कहा कि देश की अर्थ व्यवस्था एवं समाज व्यवस्था को सुधारने के लिये भगवान ऋषभदेव के सिद्धान्तों को अपनाने की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि भगवान ऋषभदेव ने जो व्यवस्था दी है उसे लागू करने से ही इस देश की माली हालत सुधर सकती है।

आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी के साथ श्री वी. धनंजयकुमारजी

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी ने कहा कि भगवान ऋषभदेव को इसलिये नहीं पूजा जाता है कि वे प्रथम तीर्थंकर थे बल्कि इसलिये पूजा जाता है कि उन्होंने मानव को मानवता का पाठ पढ़ाया था।

जगदाचार्य स्वामी अखिलेशजी, आरा ने कहा कि शिव भगवान ऋषभदेव का ही दूसरा रूप है। इसलिये दोनों में अनेक समानताएँ पाई जाती हैं। वृषभ दोनों से जुड़ा है। कैलाश पर्वत भी दोनों से सम्बद्ध है। उन्होंने कहा कि ऋषभदेव ज्ञानावतार थे तथा जहाँ सत्य, संतोष व शान्ति होती है, वे वहीं रहते हैं।

सुप्रसिद्ध पुरातत्वविज्ञ डॉ. मुनीषचन्द्र जोशी, दिल्ली ने कहा कि जैन धर्म के प्रारम्भ के बारे में कोई निश्चित प्रमाण नहीं है, यह तो अनादि काल से चला आ रहा है। जैन धर्म ही एक मात्र ऐसा विश्वधर्म है जिसमें सहस्राब्दियों पूर्व भी यह कल्पना की गई थी कि सम्पूर्ण विश्व एक हो। उन्होंने कहा कि पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से जो भ्रांतियाँ फैलाई जा रही हैं वह ज्ञान पश्चिम से आया है। पश्चिम में आज भी जैन धर्म का

उद्‌भव भगवान महावीर से माना जाता है जो कि बिल्कुल गलत है।

डॉ. जोशी ने कहा कि आज जैन धर्म व भगवान ऋषभदेव के ऊपर शोध व खोज की जाना चाहिये। संभव है कि कालान्तर में भगवान ऋषभदेव को ही शिव कहा जाने लगा हो। उन्होंने कहा भगवान ऋषभदेव के द्वारा की गई व्यवस्था को भूलने के कारण ही देश वर्तमान स्थिति से गुजर रहा है।

डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर ने कहा कि आज पाठ्य पुस्तकों में जैन धर्म के सन्दर्भ में जो तथ्यहीन लिखा जा रहा है उसे रोका जाना चाहिये। उन्होंने बताया कि इन्दिरा गांधी खुला वि.वि. की एक पुस्तक में लिखा है कि दिगम्बर जैन धर्म में स्त्री साध्वियाँ नहीं होती हैं। यह पूर्णरूपेण भ्रामक व असत्य है। दिगम्बर जैन धर्म में भी साध्वियाँ हुई हैं एवं हो रही हैं, जिन्हें आर्यिका माताजी कहा जाता है। मंच पर विराजमान पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी इसकी मिसाल हैं।

पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागरजी महाराज ने 4 से 10 फरवरी 2000 तक मनाये जाने वाले भगवान ऋषभदेव निर्वाण महोत्सव के कार्यक्रम की जानकारी दी। सांसद श्री ताराचन्द पटेल, दिल्ली के अतिरिक्त पुलिस आयुक्त श्री टी. टी. वार्डे एवं श्रीउम्मेदमल पांड्या आदि ने भी सभा को सम्बोधित किया। मंच संचालन दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर के अध्यक्ष **ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन** ने किया। इस अवसर पर अ. भा. दि. जैन महिला संगठन की पत्रिका ऋषभ देशना का विमोचन महामंत्री एवं सम्पादिका श्रीमती सुमन जैन ने कराया। श्री धनंजयकुमार जैन से लोक निर्माण विभाग, उ.प्र. के मुख्य अभियन्ता श्री धर्मवीरजी द्वारा लिखित पुस्तक पुस्तक **'जैन धर्म : मानव धर्म' का विमोचन डॉ. अनुपम जैन** ने कराया।

डॉ. अनुपम जैन 'जैन धर्म : मानव धर्म' पुस्तक का विमोचन कराते हुए। समीप हैं इंजी. श्री धर्मवीर जैन

इस अवसर पर डॉ. नीलम जैन को आर्यिका रत्नमती, श्रीमती त्रिशला जैन को रूपा बाई एवं श्रीमती अरुणा जैन 'भारती' को चन्दारानी जैन पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसके अलावा भगवान ऋषभदेव प्रश्नोत्तरी व णमोकारमंत्र लेखन के विजेताओं को भी पुरस्कृत किया गया। वित्त राज्य मंत्री **श्री धनंजयकुमार जैन को 'जैन रत्न' की उपाधि से सम्मानित किया गया।**

इसके साथ गणिनी प्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी की मंगल आरती, पाद प्रक्षालन एवं पिच्छिका परिवर्तन आदि की क्रियाएँ सम्पन्न की गईं। इसी अवसर पर तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ का प्रथम अधिवेशन वयोवृद्ध जैन विद्वान पं. शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

ऋषभदेव जैन मेला - शुभारंभ - लालकिला मैदान, दिल्ली, 4 फरवरी 2000

तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ का गठन

गतवर्ष जम्बूद्वीप हस्तिनापुर में आयोजित भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन (4-6 अक्टूबर-98) के समय तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत महासंघ के गठन की घोषणा की गई थी। घोषणानुरूप गठित तदर्थ समिति ने संविधान के निर्माण की औपचारिकतायें पूर्ण कर 24 अक्टूबर 1999 को परमपूज्य **गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी** के सान्निध्य में आयोजित प्रथम अधिवेशन में प्रस्तुत कर इसे पारित कराया। संविधान के अनुसार महासंघ की स्थापना भगवान ऋषभदेव एवं उनके द्वारा प्रतिपादित श्रमण संस्कृति के प्रचार-प्रसार जैन विद्याओं के अध्ययन एवं अनुसंधान को गति देने, जैन धर्म पर किये जाने वाले अनर्गल आक्षेपों का प्रत्युत्तर देने हेतु किया गया है। यह महासंघ समान विचारधारा के अन्य संगठनों से परस्पर सहयोग करते हुए जैन शोध को गति देने हेतु प्रयत्नशील रहेगा। 24 अक्टूबर 99 को संपन्न प्रथम अधिवेशन में निम्नवत् कार्यकारिणी का गठन किया गया।

परामर्शदाता	- **ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन, हस्तिनापुर**	अध्यक्ष	- **पं. शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी**
कार्याध्यक्ष	- **डॉ. शेखरचन्द जैन, अहमदाबाद**	महामंत्री	- **डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर**
उपाध्यक्ष	- **डॉ. धर्मचन्द जैन, कुरूक्षेत्र**	मंत्री	- **डॉ. (श्रीमती) नीलम जैन, गाजियाबाद**
	डॉ. नलिन के. शास्त्री, बोधगया	सहमंत्री	- **ब्र. (कु.) सारिका जैन**
प्रचारमंत्री	- **डॉ. अभयप्रकाश जैन, ग्वालियर**	कोषाध्यक्ष	- **डॉ. देवेन्द्र जैन, इन्दौर**

कार्यकारिणी के शेष सदस्यों की घोषणा का अधिकार अध्यक्ष महोदय को दिया गया।

संस्था का आजीवन सदस्यता शुल्क रूपये 500.00 एवं वार्षिक सदस्यता शुल्क रूपये 100.00 है। इच्छुक विद्वान सदस्यता हेतु निम्नांकित पते पर सम्पर्क करने का कष्ट करें।

डॉ. अनुपम जैन
'ज्ञानछाया'
डी-14, सुदामा नगर, इन्दौर-452009 (म.प्र.)
फोन एवं फैक्स - (0731) 787790
E-mail : kundkund@bom4.vsnl.net.in.

भोपाल में भगवान ऋषभदेव उद्यान

अक्टूबर 1997 में परमपूज्य गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि **श्री ज्ञानमती माताजी** द्वारा दिल्ली में चौबीस कल्पद्रुम महामंडल विधान का ऐतिहासिक एवं अद्वितीय आयोजन किया गया था। इस आयोजन में अन्य राजनेताओं के अतिरिक्त म.प्र. के यशस्वी मुख्यमंत्री माननीय **श्री दिग्विजयसिंह जी** भी परमपूज्य माताजी के दर्शन एवं आशीर्वाद हेतु पधारे थे। आपने पूज्य माताजी की प्रेरणा से भारतीय संस्कृति के आद्य प्रणेता तथा जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के नाम पर भोपाल में एक उद्यान का नामकरण करने की घोषणा भी की थी। अपने इस वचन की पूर्ति में माननीय श्री दिग्विजयसिंहजी के प्रयासों से भोपाल में हबीबगंज स्टेशन के पास एक उद्यान का नाम **'भगवान ऋषभदेव उद्यान'** रखा गया। इस उद्यान में लगी नामपट्टिका सहित एक चित्र यहाँ प्रदर्शित है। हमें विश्वास है कि यह उद्यान जन-जन में भारतीय संस्कृति के आद्य प्रणेता भगवान ऋषभदेव की स्मृति को जाग्रत करेगा एवं शोधकों को ऋभदेव की परम्परा के अध्ययन हेतु प्रेरित करेगा। इस उद्यान के नामकरण में श्री कैलाशचन्द चौधरी, सनावद का विशेष सहयोग रहा।

जैन विद्या विश्वकोश
सर्वोदय जैन विद्यापीठ की परियोजना

आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि जैन विद्या विश्वकोश का कार्य निरन्तर प्रगति पर है। जैन विद्या विश्वकोश पंथ - निरपेक्ष रूप में जैन धर्म एवं संस्कृति से सम्बन्धित प्रत्येक बिन्दु को समाहित करने के लिए संकल्पित है, जो बारह खण्डों में प्रकाशित होना है। यह महनीय कार्य आप सबके सहयोग से ही पूरा हो सकेगा। हमें आपसे निम्नांकित अपेक्षाएं है -

1. यदि आप कम्प्यूटर प्रोग्रामर है तथा अपनी दक्षता Visual Basic एवं Multimedia Designing में रखते है और हमें एक माह में तीन से चार दिन की सेवाएं दे सकते हैं तो हम आपसे उक्त सेवाओं की अपेक्षा रखते हैं। (संस्था आपकी यात्रा में होने वाले व्यय को सहर्ष स्वीकार करेगी) यदि आप पूरे समय हमारे केन्द्र पर काम करना चाहें तो अपनी मासिक मानदेय की अपेक्षा से हमें अवगत करायें। सूचना भेजते समय अपनी विशेषज्ञता के अनुभव का उल्लेख अवश्य करें।

2. यदि आप हिन्दी से अंग्रेजी और अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद कर सकते हैं तो हम आपसे अपेक्षा करते हैं कि आप हमें अपनी सेवा समूल्य या निर्मूल्य संयोजकीय कार्यालय में या अपने मूलस्थान से ही जैसे भी देना चाहें, दें. कृपया अपने अनुवाद के अनुभव सहित अपनी मानदेय की अपेक्षा से हमें अवगत कराएं।

3. जैन - धर्मायतनों में गन्धर्वों के द्वारा पूजन, भजन एवं पदों के गायन की लम्बी परंपरा रही है। यदि आपके पास गन्धर्वों द्वारा गाये गये उक्त गायन के पुराने ऑडियो कैसेट या रिकार्ड उपलब्ध हों तो उनकी एक प्रतिलिपि हमें उपलब्ध करायें। यदि प्रतिलिपि उपलब्ध कराने में किसी प्रकार की समस्या है. तो उक्त सामग्री को मूलरूप में ही हमें भेजे। हम आपकी सामग्री संकलन के अनन्तर मूलरुप में ही लौटाने के लिए वचनबद्ध हैं।

4. यदि जैन परम्परा से सम्बन्धित विभिन्न संस्कारों, उत्सवों के आयोजनों से सम्बन्धित वीडियो - रिकार्डिंग की कोई कैसेट उपलब्ध हो तो उसकी एक प्रतिलिपि हमें उपलब्ध करायें। यदि प्रतिलिपि उपलब्ध कराने में किसी प्रकार की समस्या है तो उक्त सामग्री को मूलरूप में ही हमें भेजें। हम आपकी सामग्री संकलन के अनन्तर मूलरूप में ही लौटाने के लिए वचनबद्ध हैं।

5. जैन परम्परा से सम्बन्धित तीर्थों, विशिष्ट मंदिरों, गुफाओं, मूर्तियों, टोकों, पूजाओं, विभिन्न पूजा - पाठों के माड़नों तथा विभिन्न प्रतीकों से सम्बन्धित विवरण एवं स्टिल फोटोग्राफी - रंगीन या काले सफेद चित्रों में उपलब्ध हो तो हमें उसकी एक प्रतिलिपि उपलब्ध करायें। यदि प्रतिलिपि उपलब्ध कराने में किसी प्रकार की समस्या है तो उक्त सामग्री को मूलरूप में ही हमें भेजे। हम आपकी सामग्री संकलन के अनन्तर मूलरूप में ही लौटाने के लिए वचनबद्ध हैं।

सामग्री या सूचना हमें जैनविद्या विश्वकोश के निम्नांकित संयोजकीय कार्यालय में भेजने का कष्ट करें।

प्रो. वृषभ प्रसाद जैन
अकादमिक संयोजक एवं परियोजना प्रशासक,
बी - 1 / 132, सेक्टर - जी, अलीगंज, लखनऊ - 24
फोन : 0522 - 322263

दिगम्बर जैन महासमिति एकता शंखनाद समारोह

समस्त दिगम्बर जैन समाज की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था दि. जैन महासमिति के रजत जयन्ती वर्ष की स्मृति में आयोजित एकता शंखनाद समारोह **संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज** के ससंघ सानिध्य में 30 - 31 अक्टूबर - 1999 को दि. जैन अतिशय क्षेत्र गोम्मटगिरि इन्दौर में संपन्न हुआ। समारोह का उद्घाटन भारत सरकार के वित्त राज्यमंत्री माननीय **श्री वी. धनंजय कुमार** के कर कमलों से **श्री महेन्द्र पाण्ड्या,** अध्यक्ष फेडरेशन ऑफ जैन एसोसिऐशन इन नार्थ अमेरिका तथा **कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन,** अध्यक्ष - दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर के विशेष आतिथ्य में संपन्न हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता महासमिति के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री प्रदीप कुमार जैन कासलीवाल ने की तथा इस अवसर पर राष्ट्रीय महामंत्री श्री माणिकचन्द जैन पाटनी, अतिरिक्त महामंत्री श्री जगमोहन जैन, राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्री राजेन्द्र जैन ठोलिया - जयपुर, श्री जयनारायण जैन - मेरठ, श्री सुन्दरलाल जैन - नागपुर, श्री अशोक बड़जात्या - इन्दौर, मध्यांचल के अध्यक्ष एवं स्वागताध्यक्ष श्री हुकुमचंद जैन - इन्दौर, कार्यक्रम के प्रमुख संयोजक श्री हंसमुख जैन गाँधी - इन्दौर उपस्थित थे। सहस्त्राधिक धर्म बंधुओं की उपस्थिति में संहितासूरि पं. नाथूलालजी शास्त्री के मंगलाचरण से कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ।

समारोह के अन्तर्गत मुख्य अतिथि श्री वी. धनंजयकुमार सभा को सम्बोधित करते हुए

उद्घाटन सत्र को संबोधित करते हुए पूज्य **आचार्य श्री विद्यासागरजी** ने कहा कि - 'विशाल समारोह के कार्यक्रमों के दौरान गायक, वादक एवं नर्तकों के बीच तालमेल ध्यान देने योग्य है उनके बीच स्थापित यह तालमेल ही दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर देता है इसके अभाव में सारा कार्यक्रम ही फीका हो जाता है। आज हमारे देश में भी दि. जैन महासमिति, अखिल भारतीय दि. जैन परिषद एवं अखिल भारतीय दि. जैन महासभा नामक तीन अखिल भारतीय संस्थाएं विद्यमान है। मेरा सभी संस्थाओं के नीति निर्धारकों, पदाधिकारियों एवं कार्यकर्त्ताओं से भी *कहना है कि वे जैन धर्म के अनेकांत के सिद्धांत* को अपने आचरण में उतारें तथा भगवान ऋषभदेव से भगवान महावीर तक चली आ रही हमारी धार्मिक परंपरा एवं जैन धर्म के सर्वमान्य सिद्धांतों के अनुरूप कार्य कर समाज का

हित करें एवं विश्व के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करें। महासमिति द्वारा प्रारंभ किया गया यह एकता शंखनाद समारोह समाज के समक्ष उपस्थित सभी समस्याओं को हल करने में सहायक सिद्ध हो। यही मेरा इस शुभ अवसर पर मंगल आशीर्वाद है।'

माननीय वित्तराज्यमंत्री श्री धनंजय कुमार से मंच पर रखी गई तीन माँगें निम्नवत् है।

1. गोवंश संरक्षण एवं गोवध निरोध हेतु गाय को राष्ट्रीय पशु घोषित करें।
2. जैन समाज की शिक्षण संस्थाओं एवं धर्मायतनों की रक्षा हेतु जैनों को धार्मिक अल्पसंख्यक घोषित करें।
3. माँस निर्यात बंद करें।

आपने इन तीनों के प्रति अपनी सहमति जताते हुए अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करने का आश्वासन दिया।

उद्घाटन सत्र को राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री प्रदीपकुमारसिंह जैन कासलीवाल एवं राष्ट्रीय महामंत्री श्री माणकचन्द जैन पाटनी ने भी संबोधित किया। कार्यक्रम का सशक्त संचालन केन्द्रीय प्रचार मंत्री डॉ. अनुपम जैन ने किया। आभार माना श्री प्रवीण जैन पाटनी ने।

मध्यकालीन चर्चा सत्र में अनेक समसामयिक विषयों पर वक्ताओं ने अपने विचार रखें तथा संगठन को मजबूत करने, जैन धर्म की प्राचीनता के प्रचार - प्रसार, माँस निर्यात को बंद करने आदि पर अनेक प्रस्ताव पारित किये गये। रात्रिकालीन सम्मान समारोह में साहू जैन ट्रस्ट द्वारा महासमिति के माध्यम से प्रवर्तित श्रीमती रमादेवी महिला प्रतिभा पुरस्कार से **डॉ. नीलम जैन गाजियाबाद** को सम्मानित किया गया। विगत 5 वर्षों में महासमिति के विकास में उल्लेखनीय योगदान देने वाले 19 वरिष्ठ समाज सेवियों तथा इस वर्ष घोषित 5 राष्ट्रीय पत्रकारिता पुरस्कारों से **श्री शैलेष कापडिया (जैनमित्र - सूरत), श्री चिरंजीलाल बगड़ा (दिशाबोध - कलकत्ता), श्री जगदीश प्रसाद जैन (जैसवाल जैन दर्पण - आगरा), डॉ. सुदीप जैन (प्राकृत विद्या - दिल्ली) तथा श्री माणिकचंद जयवंतसा भिसीकर (सन्मति - कोल्हापुर) का सम्मान किया गया।** इसी अवसर पर महासमिति द्वारा जारी वार्षिक कैलेण्डर के अनुरूप श्रेष्ठ कार्य करने वाली तीन इकाइयों को भी सम्मानित किया गया।

पुरस्कृत सम्पादकगण पदाधिकारियों के साथ

प्रातःकाल पत्रकार सम्मेलन एवं महिला सम्मेलन का आयोजन हुआ। महिला सम्मेलन में समाज कल्याण बोर्ड भारत सरकार की अध्यक्षा - श्रीमती मृदुला सिन्हा (दिल्ली) तथा महासमिति महिला प्रकोष्ठ की मंत्री श्रीमती सुधा मलैया (भोपाल) ने उदबोधन दिया।

मध्यान्ह में माँस निर्यात निरोध आन्दोलन की रूपरेखा बनाने हेतु एक विशेष सत्र का आयोजन किया गया जिसमें **श्री महेन्द्र पाण्ड्या तथा ब्र. रवीन्द्र कुमारजी जैन** का आचार्य श्री की मांगलिक उपस्थिति में सम्मान किया गया।

श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार - 99 समर्पण समारोह सम्पन्न

सराकोद्धारक संत, **परमपूज्य 108 उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज** की सत्प्रेरणा से जिनवाणी के प्रचार-प्रसार हेतु अपने-अपने क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान करने वाले 5 विशिष्ट विद्वानों को श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ एवं उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज चातुर्मास समिति, अजमेर द्वारा जैन भवन, केसरगंज, अजमेर में 20.11.99 को आयोजित सम्मान समारोह में लोकप्रिय सांसद **प्रोफेसर रासासिंह रावत** के मुख्य आतिथ्य में वर्ष 1999 के 5 श्रुत संवर्द्धन पुरस्कारों से सम्मानित किया गया।

ज्ञातव्य है कि श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ द्वारा अपनी सहयोगी संस्था प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर के सहयोग से इससे पूर्व 1991 में डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य (जबलपुर) एवं पं. श्रुतसागर जैन 'न्यायतीर्थ' (शाहपुर) को दिल्ली में तथा पं. उदयचन्द जैन 'सर्वदर्शनाचार्य' (वाराणसी), पं. अमृतलाल जैन शास्त्री (वाराणसी), डॉ. राजाराम जैन (आरा), पं. भूवनेन्द्रकुमार जैन (मालथौन) को 1997 में तिजारा जी (राज.) में एवं पं. जवाहरलाल जैन (भीण्डर), प्रो. चेतनप्रकाश पाटनी (जोधपुर), पं. रतनलाल जैन शास्त्री (इन्दौर), प्रा. नरेन्द्रप्रकाश जैन (फिरोजाबाद) एवं डॉ.फूलचन्द प्रेमी (वाराणसी) को 1998 में तिजारा जी में सम्मानित किया जा चुका है।

वर्ष 1999 से श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ ने नियमित रूप से पाँच वार्षिक पुरस्कार प्रदान करने का निश्चय किया जिसके अन्तर्गत प्रत्येक पुरस्कृत विद्वान को रुपये 31,000=00 की नगदराशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति पत्र से समारोह पूर्वक सम्मानित किया जाना तय किया गया।

वर्ष 1999 के पुरस्कारों के निर्णय हेतु निम्नांकित 4 सदस्यीय निर्णायक मंडल का गठन किया गया जिसके निम्नांकित सदस्य थे।

1. **श्री योगेशकुमार जैन,** अध्यक्ष - प्राच्य श्रमण भारती, खतौली
2. **प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन,** अध्यक्ष - अ. भा. दि. जैन शास्त्री परिषद, फिरोजाबाद
3. **डॉ. नलिन के. शास्त्री**, अध्यक्ष - श्रुत संवर्द्धन संस्थान, समायोजक - महाविद्यालय विकास परिषद, मगध वि. वि., बोधगया (बिहार)
4. **डॉ. अनुपम जैन,** संयोजक - पुरस्कार योजना, सम्पादक - अर्हत् वचन, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, म. गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर

निर्णायक मंडल ने निम्नांकित पाँच पुरस्कारों के अधीन प्राप्त कुल 123 प्रविष्टियों का मूल्यांकन कर निम्नवत् 5 पुरस्कारों की घोषणा की है —

1. ***आचार्य श्री शान्तिसागर छाणी स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार** - 99* **(कुल प्रविष्टियाँ 18)**
   जैन आगम साहित्य के पारम्परिक अध्येता, टीकाकार विद्वान को आगमिक ज्ञान के संरक्षण हेतु
   डॉ. रतनचन्द जैन, आराधना नगर, कोटरा सुल्तानाबाद, भोपाल - 462003
2. ***आचार्य श्री सूर्यसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार** - 99* **(कुल प्रविष्टियाँ 31)**
   प्रवचन निष्णात् विद्वान को जिनवाणी की प्रभावना हेतु
   पं. शिवचरनलाल जैन, सीताराम मार्केट, मैनपुरी (उ.प्र.)
3. ***आचार्य श्री विमलसागर (भिण्ड) स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार** - 99* **(कुल प्रविष्टियाँ 24)**
   जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान हेतु
   श्री अजितप्रसाद जैन, प्रधान सम्पादक - शोधादर्श, पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ (उ.प्र.)
4. ***आचार्य श्री सुमतिसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार** - 99* **(कुल प्रविष्टियाँ 30)**
   जैन विद्याओं के पारम्परिक अध्ययन / अनुसंधान के क्षेत्र में समग्र योगदान हेतु
   श्री रामजीत जैन 'एडवोकेट', टकसाल गली, दानाओली, ग्वालियर (म.प्र.)

5. *मुनि श्री वर्द्धमानसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार - 99* **(कुल प्रविष्टियाँ 20)**
जैन धर्म / दर्शन के किसी भी क्षेत्र में लिखी गई मौलिक, शोधपूर्ण, अप्रकाशित कृति पर
डॉ. कस्तूरचन्द्र 'सुमन', प्रभारी - जैन विद्या संस्थान, श्रीमहावीरजी (राज.)

पुरस्कार समर्पण समारोह **'डॉ. हीरालाल जैन - व्यक्तित्व एवं कृतित्व, राष्ट्रीय संगोष्ठी'** के मध्य जैन भवन, केसरगंज, अजमेर में लगभग 50 विद्वानों एवं शताधिक श्रावकों की गरिमामय उपस्थिति में आयोजित किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि के रूप में केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्री माननीय **श्री मुरलीमनोहरजी जोशी** का आना निश्चित था किन्तु अपरिहार्य कारणों से उनकी यात्रा स्थगित होने से उनके प्रतिनिधि के रूप में लोकप्रिय क्षेत्रीय सांसद **श्री रासासिंह रावत** पधारे। अपने संबोधन में माननीय श्री रावतजी ने कहा कि सरस्वती के इन 5 वरद् पुत्रों का सम्मान करते हुए वे स्वयं अभिभूत हैं। 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' को अपना आदर्श मनाने वाले पुरस्कृत सभी विद्वानों को आपने अपनी ओर से बधाई दी।

श्रुत संवर्द्धन संस्थान के अध्यक्ष डॉ. नलिन के. शास्त्री (बोधगया) का सम्मान करते हुए माननीय सांसद श्री रासासिंहजी रावत.

कार्यक्रम का शुभारम्भ **ब्र. अनिता बहन** के मंगलाचरण से हुआ। श्रुत संवर्द्धन संस्थान के अध्यक्ष **डॉ. नलिन के. शास्त्री** ने स्वागत भाषण में कहा कि श्रुत परम्परा को विलुप्त होने से बचाने के लिये परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी, आचार्य श्री सुमतिसागरजी एवं उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी की चरण रज से पवित्र अजमेर में जन प्रतिनिधियों एवं डॉ. हीरालाल जैन की जन्म शताब्दी में आयोजित संगोष्ठी में पधारे विद्वत्जनों की उपस्थिति आज के कार्यक्रम को ऐतिहासिक बना रही है। इसके लिये सौजन्य प्रदाता एवं जिन्होंने पुण्यार्जन किया उनके प्रति वे कृतज्ञ हैं। यह संस्थान शोध पत्रों के प्रकाशन, शोधकर्ताओं की सुविधा व्यवस्था एवं शोध ग्रन्थालय के स्थापना हेतु जो योजना बना रही है उसमें जननायक का समर्थन व समाज का मार्गदर्शन मिले तो उन्हें मूर्त रूप देने का विचार किया जायेगा। इसके बाद पुरस्कार निर्णायक मंडल के **प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन** (सम्पादक - जैन गजट साप्ताहिक) ने चयन प्रक्रिया के विषय में बतलाते हुए कहा कि 123 विद्वानों के आवेदनों में से चयन समिति ने विधिपूर्वक सर्वानुमति से विद्वानों का चयन किया। उन्होंने कहा कि समाज बहती हुई नदी है जिसके एक किनारे पर विद्वान है और दूसरे किनारे पर साधु हैं, किनारे टूटने पर विनाश का कारण बनता है। आज विद्वान कम होते जा रहे है और साधुओं की संख्या बढ़ रही है। संस्कृति और भारतीय मूल्यों को जीवित रखने को साधु एवं विद्वान दोनों के सहयोग की आवश्यकता है और इस संबंध में उपाध्यायश्री ने जिस तरह विद्वानों को गोष्ठियों आदि द्वारा जो स्वर्णिम गौरव दिलाया वे उनके प्रति नममस्तक है। पुरस्कार योजना के संयोजक **डॉ. अनुपम जैन,** इन्दौर संयोजक ने बतलाया कि 1997 तक 6, 1998 में 5 और आज 1999 में 5 विद्वानों को, इस प्रकार कुल 16 विद्वानों को इस योजना के अन्तर्गत पुरस्कृत किया जा चुका है।

पुरस्कार प्राप्तकर्त्ताओं ने अपनी भावनाएं व्यक्त करते हुए संस्थान, समिति को साधुवाद एवं

उपाध्यायश्री को ससंघ नमन किया। उपाध्याश्री ने अपने मंगल आशीर्वाद में कहा कि **सरस्वती के वरद पुत्रों, विद्वानों का सम्मान उनका नहीं बल्कि जिनवाणी का सम्मान है। साधुओं की सीमा होती है जबकि विद्वान यत्र-तत्र जाकर गौरवशाली, आध्यात्मिक व परमार्थिक योजना रखते हुए ग्रंथों का अनुवाद, सम्पादन, सृजन, श्रुत की आराधना, जिनवाणी की सेवा कर सकते हैं। पुराने विद्वानों का जो इसके प्रति लगाव था उसकी वर्तमान में कमी है लेकिन फिर भी अनेकों विद्वान है जो शोध, खोज एवं सम्पादन जैसे दुरूह कार्यों में लगे हुए हैं। विद्वानों का सम्मान, पाण्डुलिपियों का प्रकाशन-वाचन, जिनवाणी का निरन्तर विकास व उन्नति हों, यह उनकी भावना रही है। विद्वानों के सम्मान से उनका रोम-रोम पुलकित हो जाता है। उन्होंने आचार्य शान्तिसागर छाणी महाराज व उनकी परम्परा के आचार्यों आदि की स्मृति में दिये गये पुरस्कार एवं सराक जाति के उत्थान में योगदान देने वालों को पुरस्कृत करने की योजना पर प्रकाश डालते हुए बतलाया कि इससे जहां श्रुत संवर्द्धन होगा, वहां सराक जाति के उत्थान में कार्य करने वाली समितियों को प्रेरणा व मार्गदर्शन भी प्राप्त होगा। चातुर्मास समिति, अजमेर के बन्धुओं ने सभी का आभार माना।**

इसी अवसर पर अ. भा. दि. जैन सराक ट्रस्ट की ओर से इसी वर्ष से प्रायोजित सराक पुरस्कार-99 का समर्पण **सराकोत्थान उपसमिति-गाजियाबाद** को किया गया। इस पुरस्कार के अन्तर्गत सराक क्षेत्र में सराक बन्धुओं के उत्थान हेतु सर्वश्रेष्ठ सेवा कार्य करने अथवा सराकोत्थान हेतु जन जाग्रति उत्पन्न करने वाले व्यक्ति अथवा संस्था को प्रति वर्ष रु. 25,000=00 नगद, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति से सम्मानित किया जायेगा। इस वर्ष प्राप्त 14 प्रविष्टियों का मूल्यांकन श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार निर्णायक समिति द्वारा ही किया गया।

आचार्य जिनसेन कृत आदिपुराण - राष्ट्रीय संगोष्ठी

अलवर, 24 - 26 अक्टूबर 1999

युवामनीषी, परम पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज के ससंघ सान्निध्य में आचार्य जिनसेन कृत आदिपुराण पर जैन भवन, अलवर में 24-26 अक्टूबर 1999 के मध्य एक त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की गई। उद्घाटन एवं समापन सत्र सहित नौ सत्रों में सम्पन्न इस संगोष्ठी में लगभग 60 मूर्धन्य विद्वान सम्मिलित हुए। संगोष्ठी के 9 सत्रों की अध्यक्षता क्रमश: डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव (पटना), जैन विश्व भारती संस्थान-लाडनूं के पूर्व कुलपति प्रो. रामजीसिंह (भागलपुर), डॉ. लालचन्द जैन (वैशाली), डॉ. रमेशचन्द जैन (बिजनौर), डॉ. वृषभप्रसाद जैन (लखनऊ), डॉ. (श्रीमती) राजमती दिवाकर (सागर), डॉ. शीतलचन्द जैन (जयपुर), डॉ. कृष्णकांत शर्मा (वाराणसी) एवं डॉ. जयकुमार जैन (मुजफ्फरनगर) ने की। संगोष्ठी का उद्घाटन श्री नरेन्द्र पाटनी, डी.आई.जी.-अलवर-भरतपुर रेंज द्वारा दीप प्रज्जवलन से सम्पन्न हुआ। **पूज्य मुनि श्री ने अपने मांगलिक उद्बोधन में समस्त जैन विद्वानों का एकमत होकर जैन साहित्य, संस्कृति के राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक प्रचार करने हेतु आह्वान किया। आपने तार्किक ढंग से सिद्ध किया कि जैन जीवन पद्धति एवं सिद्धान्त आज भी समसामयिक एवं प्रासंगिक हैं।** संगोष्ठी के मध्य अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के अध्यक्ष *डॉ. रमेशचन्द जैन (बिजनौर) को महाकवि आचार्य मानसागर* पुरस्कार से तथा डॉ. उदयचन्द जैन (उदयपुर), डॉ. जयकुमार जैन (मुजफ्फरनगर), डॉ. फूलचन्द्र प्रेमी (वाराणसी) का भी विशेष सम्मान किया गया।

■ **डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी'**
संगोष्ठी संयोजक

''सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान'' विषय पर राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी

धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान बड़ौत / जयपुर द्वारा दिगम्बर जैन समाज, झाड़ोल (उदयपुर) के सहयोग से गणधराचार्य आचार्य श्री कुन्थुसागरजी के शिष्य आचार्य श्री कनकनंदी के ससंघ सान्निध्य में दिनांक 19 - 23 नवम्बर 99 के मध्य तृतीय राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी झाड़ोल जिला - उदयपुर में संपन्न हुई। आचार्य श्री कनकनंदी द्वारा रचित पुस्तक **सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान** पर 25 मूर्धन्य विद्वानों ने विविध विषयक आलेख प्रस्तुत किये। यह आलेख जैन दर्शन में शिक्षा का स्वरूप, प्राचीन जैन ग्रंथों में निहित शिक्षा पद्धति, शिक्षा के सार्वभौम स्वरूप, छात्र असंतोष, वर्तमान शिक्षा पद्धति की कमियों एवं उसमें सुधार के उपायों पर केन्द्रित थे।

संगोष्ठी का विशेष आकर्षण प्रस्तुत किये गये आलेखों में से श्रेष्ठ आलेखों का चयन कर उन्हें विशिष्ट उपाधियों तथा नगद पुरस्कारों से सम्मानित किया जाना था। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर से सम्बद्ध विद्वान **श्री संजीव सराफ** M. Lib. (सागर) को उनके शोध पत्र **''वैज्ञानिक पद्धति एवं मस्तिष्क प्रकोष्ठ के विशेष सन्दर्भ में ज्ञान प्राप्ति के उपाय''** विषय पर ''ज्ञानश्री'' की उपाधि, रू. 9000 की नगद राशि, शाल, श्रीफल, स्मृति चिन्ह एवं पगड़ी से सम्मानित किया गया। उनका शोध पत्र निर्णायक मंडल द्वारा सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया।

प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुरस्कारों के अन्तर्गत संयुक्त रूप से श्रीमती पुष्पा जैन एवं हनुमानसिंह वर्डिया को ''विद्या श्री'', डा. मुकेश जैन (जबलपुर) एवं संजय जैन (जबलपुर) को ''शिक्षा श्री'' तथा डा. वंदना जैन (आगर - मालवा) एवं सुरुचि जैन को ''विनय श्री'' की उपाधियों एवं नगद पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में राजस्थान के शिक्षामंत्री माननीय श्री भीखाभाई विशेष रूप से उपस्थित थे।

श्री संजीव जैन सराफ पुरस्कार ग्रहण करने के उपरांत आचार्यश्री के सानिध्य में

'बुन्देलखण्ड के जैन तीर्थ एवं उनकी वास्तुकला' विद्वत्गोष्ठी

बुन्देलखण्ड गौरव पंडित गोरेलाल शास्त्री स्मृति ग्रंथ लोकार्पण समारोह सम्पन्न

लघु सम्मेदशिखर, पावन भूमि, सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि में **सर्वोदयी सन्त, प्रज्ञाश्रमण 108 आचार्य श्री देवनन्दिजी महाराज** के ससंघ वर्षायोग के मध्य आचार्यश्री की 36 वीं जन्म जयन्ती पर अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी एवं बुन्देलखंड **गौरव प. गोरेलाल शास्त्री स्मृति ग्रंथ** का लोकार्पण समारोह 13 अगस्त से 15 अगस्त 1999 तक आयोजित किया गया।

अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी **बुन्देलखंड के जैन तीर्थ, उनकी वास्तु कला एवं वास्तु विद्या** पर केन्द्रित थी। संगोष्ठी चार सत्रों में - प्रथम सत्र सिद्ध क्षेत्र द्रोणगिरि, द्वितीय सत्र बुन्देलखंड के जैन तीर्थ, तृतीय सत्र तीर्थ क्षेत्रों की वास्तु कला एवं वास्तु विद्या पर सम्पन्न हुई।

संगोष्ठी का उद्घाटन दिनांक 13 अगस्त को प्रात: 9 बजे चौबीसी जिनालय के विशाल प्रवचन मण्डप में आचार्य श्री देवनन्दिजी के सानिध्य में वर्णीजी के चित्र के समक्ष मुख्य अतिथियों द्वारा आचार्य संघ के सान्निध्य में दीप प्रज्वलन से हुआ। संगोष्ठी के संयोजक **डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु'** ने संगोष्ठी की पूर्व पीठिका पर प्रकाश डालते हुए उदयपुर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ. उदयचन्द्रजी को सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि पर अपना शोध आलेख प्रस्तुत करने के लिये आमंत्रित किया। डॉ. प्यारेलालजी शर्मा, श्री कमलकुमार जैन, डॉ. दयाचन्द्रजी साहित्याचार्य - सागर द्वारा द्रोणगिरि पर अपने आलेख प्रस्तुत करने के पश्चात आचार्यश्री ने संगोष्ठी को सम्बोधित करते हुए समागत विद्वानों को अपना शुभाशीष प्रदान करते हुए संगोष्ठी की उपादेयता बताई। आचार्य श्री के सम्बोधन के साथ ही संगोष्ठी का प्रथम सत्र समाप्त हुआ।

संगोष्ठी का द्वितीय सत्र 2.30 से एवं तृतीय सत्र 14.8.99 को बुन्देलखंड के जैन तीर्थ, उनकी वास्तु कला एवं वास्तु विद्या पर प्रारम्भ हुए जिसमें अधिकारी विद्वानों ने शोध - खोज पूर्ण आलेख प्रस्तुत किये।

दिनांक 14.8.99 को संगोष्ठी का चतुर्थ सत्र एवं बुन्देलखंड गौरव पंडित गोरेलाल शास्त्री स्मृति ग्रन्थ का लोकार्पण समारोह आचार्यश्री के ससंघ सान्निध्य में प्रो. शिवकुमार श्रीवास्तव, कुलपति - सागर, श्री डालचन्द जैन, पूर्व सांसद - सागर, श्री दशरथ जैन, पूर्व मंत्री, श्री नीरज जैन - सतना आदि की विशिष्ट उपस्थिति में सम्पन्न हुआ।

संगोष्ठी में सर्वश्री डॉ. आर. डी. मिश्र - सागर, डॉ. एन. आर. राठोर, डॉ. जी. सी स्वर्णकार - दमोह, डॉ. भवानीदीन, डॉ. स्वामीदीन - हमीरपुर, श्री नीरज जैन, श्री निर्मल जैन - सतना, डॉ. शीतलचन्द्र जैन, डॉ श्रेयांसकुमार जैन, डॉ. सनतकुमार जैन - जयपुर, डॉ. लालचन्द्र जैन - वैशाली, डॉ. कृष्णा जैन, डॉ. अभयप्रकाश जैन, श्री रामजीत जैन एडवोकेट - ग्वालियर, डॉ. उदयचन्द्र जैन - उदयपुर, डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन - श्रावस्ती, पं. उत्तमचन्द्र जैन राकेश - ललितपुर, पं. गुलाबचन्द्र जैन पुष्प, पं. जयनिशान्त, पं. बाबूलाल जैन प्रतिष्ठाचार्य - टीकमगढ़ आदि 50 विद्वान सम्मिलित हुए।

गीता – ज्ञान – आराधना 'स्वतंत्र' पारमार्थिक न्यास की स्थापना

जैनमित्र के भूतपूर्व सम्पादक, समाज सुधारक, **स्व. पं. श्री ज्ञानचन्द्रजी जैन 'स्वतंत्र'** की नवमी पुण्यतिथि पर श्रावण शुक्ल वात्सल्य पूर्णिमा के दिन उनकी स्मृति में परिवारजनों ने एक लाख रुपये के ध्रौव्य फण्ड से उक्त पारमार्थिक न्यास की स्थापना की।

'स्वतंत्र' जी की विदुषी बालब्रह्मचारिणी पुत्री **डॉ. आराधना जैन** ने बताया कि निर्धन एवं पात्र छात्रों को छात्रवृत्ति, विधवाओं एवं अनाथों को सहयोग, विद्वानों का सम्मान तथा ऐसे ही अन्य कार्य करना न्यास के उद्देश्य हैं।

अनेकान्त ज्ञान मन्दिर, बीना की एक अद्वितीय उपलब्धि

सेठ भागचन्दजी सोनी की नसियां, अजमेर से लगभग 1200 हस्तलिखित ग्रन्थों की उपलब्धि

अनेकान्त ज्ञान मन्दिर (शोध संस्थान), बीना अपनी जिनवाणी संरक्षण की अभिनव यात्रा को अबाध गति से चलाता आ रहा है। 'शास्त्रोद्धार शास्त्र सुरक्षा अभियान' बीना के 66 वें दौरे के अन्तर्गत **ब्र. संदीपजी 'सरल'** 28.10.99 को अजमेर पहुँचे और श्री प्रमोदचन्दजी सोनी एवं श्री इन्दरचन्दजी पाटनी से लगभग 1200 हस्तिलिखित ग्रन्थों को प्राप्तकर बीना लाये।

ज्ञातव्य है कि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने जून 99 में इस भंडार का अवलोकन कर इसे तत्काल सूचीबद्ध करने की पहल की थी तथा उसके सूची पत्र को प्राप्त कर उसे कम्प्यूटर पर डाला था। अब तक अनेकान्त ज्ञान मन्दिर में हस्तलिखित करीब 5000 हस्तलिखित ग्रन्थ हो चुके हैं। मुद्रित ग्रन्थ 7000 हैं। शोधार्थियों हेतु आवास - आहार की समुचित व्यवस्था की गई है। संस्थान में फोटोस्टेट मशीन, कम्प्यूटर आदि की समस्त व्यवस्थाएँ भी की जा चुकी हैं।

अहिंसा इन्टरनेशनल द्वारा वार्षिक पुरस्कारों के लिये नाम आमंत्रित

निम्न चार वार्षिक पुरस्कारों (वर्ष 1999) के लिये नाम आमंत्रित हैं -

1. **अहिंसा इन्टरनेशनल डिप्टीमल आदीश्वरलाल जैन साहित्य पुरस्कार (राशि - 31,000)**
   यह पुरस्कार जैन साहित्य के विद्वान को उनके समग्र साहित्य अथवा एकल कृति की श्रेष्ठता के आधार पर दिया जाएगा। लिखित पुस्तकों की सूची तथा अपनी एकल कृति या दो श्रेष्ठ पुस्तकों का भेजना आवश्यक है।
2. **अहिंसा इन्टरनेशनल भगवानदास शोभालाल जैन शाकाहार पुरस्कार (राशि - 21,000)**
   यह पुरस्कार शाकाहार प्रसार के क्षेत्र में कार्य कर रहे कर्मठ कार्यकर्त्ता को उनकी कार्य की श्रेष्ठता के आधार पर दिया जाएगा। अपने क्षेत्र में किये गये कार्य का विवरण समुचित विस्तार से भेजें।
3. **अहिंसा इन्टरनेशनल रघुवीरसिंह जैन जीव रक्षा पुरस्कार (राशि - 11,000)**
   यह पुरस्कार जीव रक्षा के क्षेत्र में कार्य करे रहे कर्मठ कार्यकर्त्ता को उनके कार्य की श्रेष्ठता के आधार पर दिया जाएगा। अपने क्षेत्र में किये गये कार्य का समुचित विवरण विस्तार से भेजें।
4. **अहिंसा इन्टरनेशनल प्रेमचन्द जैन पत्रकारिता पुरस्कार (राशि - 5,000)**
   यह पुरस्कार श्रेष्ठ रचनात्मक जैन पत्रकारिता के लिये पत्रकार को दिया जायेगा।

नाम का सुझाव स्वयं लेखक / कार्यकर्त्ता / संस्था अथवा अन्य व्यक्ति द्वारा 15 जनवरी 2000 तक निम्न पते पर लेखक / कार्यकर्त्ता / पत्रकार के पूरे नाम व पते, जीवन परिचय (संबंधित क्षेत्र में कार्य सहित) व पासपोर्ट आकार के फोटो सहित आमंत्रित है। पुरस्कार नई दिल्ली में भव्य समारोह पर भेंट किए जायेंगे।

संपर्क :

प्रदीप कुमार जैन, सचिव
अहिंसा इन्टरनेशनल
4687, उमराव गली, पहाड़ी धीरज
दिल्ली - 110006 दूरभाष : 3531678

सतीश कुमार जैन, महासचिव
अहिंसा इन्टरनेशनल
C - III, 3/29, Vasant Kunj
New Delhi - 110070

इनसाइक्लोपिडिया ऑफ जैनिज्म Encyclopedia of Jainism

Jain Academic Foundation of North America (JAFNA) द्वारा प्रायोजित इनसायक्लोपिडिया ऑफ जैनिज्म की परियोजना निरन्तर प्रगति कर रही है। यह विश्वकोष (Encyclopedia) 11 खण्डों में प्रकाश्य है जिसकी सूची निम्नवत् है -

प्रधान सम्पादक - डॉ. कमलचन्द सोगाणी

1.	History of Jainism	डॉ. के. सी. जैन
2.	Language and Literature, Volume - I	डॉ. राजाराम जैन
3.	Language and Literature, Volume - II	डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव
4.	Philosophy and Psychology	डॉ. एम. डी. वसन्तराज
5.	Religion, Ethics & Society	डॉ. कमलचन्द सोगाणी
6.	Jaina Sciences	डॉ. अनुपम जैन
7.	Contemporary Jainism and Society	डॉ. भागचन्द जैन 'भास्कर'
8.	Logic & Epistemology	डॉ. धरमचन्द जैन
9.	Art & Architecture	डॉ. आर. सी. शर्मा
10.	Manuscript and Inscriptions	श्री एम. विनय सागर
11.	Jaina Society	डॉ. विलास संगवे

उक्त 11 खण्डों में से History of Jainism का खण्ड पूर्ण हो चुका है तथा इसकी पांडुलिपि भी डॉ. सोगाणी के निवास पर इच्छुक विद्वानों के अवलोकनार्थ एवं सुझावार्थ उपलब्ध कराई गई थी। अन्य खण्डों का कार्य भी प्रगति पर है। विभिन्न खण्डों की विषय वस्तु में रूचि रखने वाले विद्वान तद्‌विषयक सामग्री एवं सुझाव प्रभारी संपादकों अथवा प्रधान संपादक को भेज सकते हैं। प्रयुक्त प्रकाशित / अप्रकाशित सामग्री का उपयोग किये जाने पर सम्बद्ध लेखक / प्रकाशक को JAFNA द्वारा निर्धारित नियमानुसार मानदेय प्रदान किया जायेगा।

डा. प्रेमचन्द गाडा	**दिलीप बोबरा**	**जुबिन मेहता**	**प्रवीण शाह**
अध्यक्ष	उपाध्यक्ष	सचिव	कोषाध्यक्ष

दिगम्बर जैन महासमिति के दल की विदेश यात्रा

दिगम्बर जैन महासमिति द्वारा अगस्त - 99 में विदेश यात्रा का आयोजन किया गया। 15 अगस्त 99 को दिल्ली से यात्रा प्रारम्भ कर फ्रांस, इटली, आस्ट्रिया, जर्मनी, हालेण्ड, बेल्जियम, इंगलैण्ड आदि देशों की यात्रा कर महासमिति का यह दल 2 सितम्बर 99 को दिल्ली वापिस आ गया। यात्रा दल के प्रमुख **श्री माणिकचन्द जैन पाटनी (इन्दौर)** ने बताया कि विदेशों में बसे जैन बन्धुओं में अध्यात्म के प्रति गहन अभिरूचि है और यदि व्यवस्थित प्रयास किया जाये तो भविष्य में जैन संस्कृति के प्रचार - प्रसार की असीम संभावनाएँ उपलब्ध हैं।

प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी बाजपेयी की आचार्य श्री विद्यासागरजी से गंभीर चर्चा

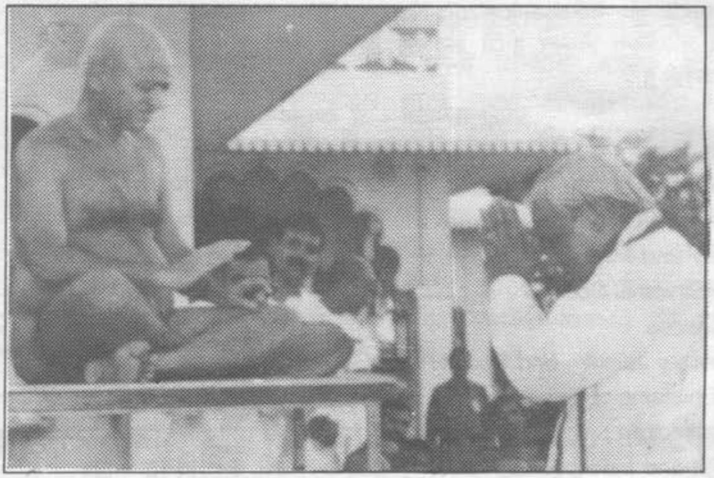

संतशिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के इन्दौर वर्षायोग के मध्य भारत के प्रधान मंत्री माननीय श्री अटलबिहारी बाजपेयी आचार्य श्री के दर्शनार्थ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र गोम्मटगिरि पर पधारे। समुचित विनय वन्दना के उपरान्त प्रधानमंत्री द्वारा आचार्यश्री से मार्गदर्शन की अकांक्षा व्यक्त करने पर आचार्य श्री ने भारत भूमि से माँस निर्यात जैसे घृणित कार्य को अविलम्ब रोकने एवं गाय को राष्ट्रीय पशु घोषित करने की कामना व्यक्त की। माननीय प्रधानमंत्रीजी ने गोम्मटगिरि पर स्थित भगवान बाहुबली की मूर्ति एवं अन्य जिनालयों में पूजा अर्चना करने के बाद लगभग ३५ मिनट तक आचार्यश्री से विभिन्न विषयों पर चर्चा की।

आवश्यकता है।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (देवी अहिल्या विश्वविद्यालय द्वारा मान्य शोध संस्थान), इन्दौर में निम्नांकित पदों हेतु योग्य प्रत्याशियों से आवेदन १५ जनवरी २००० तक आमंत्रित है —

१. शोध सहायक (प्रकाशन विभाग) - किसी भी विषय में स्नातकोत्तर उपाधि, प्रकाशन कार्य के अनुभवी को वरीयता, वेतन योग्यतानुसार।

२. शोध सहायक (पांडुलिपि सूचीकरण परियोजना) - संस्कृत / प्राकृत के पठन - पाठन में सक्षम पारम्परिक विद्वान। प्रूफ रीडिंग में अनुभवी को प्राथमिकता। वेतन योग्यतानुसार। आवास की सुविधा।

३. कार्यालय सहायक - कम्प्यूटर, टायपिंग में प्रवीण, हिन्दी / अंग्रेजी पत्राचार में सक्षम। वेतन योग्यतानुसार।

सम्पर्क करें -

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,
५८४, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज,
इन्दौर - ४५२ ००१

मत - अभिमत

आप जैसे उच्च कोटि के विद्वान और कुशल सम्पादक से आत्मीय साधार्मिक सम्बन्ध का होना मेरे विकास का प्रेरक है।

प्रत्यक्षत: नहीं देखा है पर पत्र - पत्रिकाओं में बहुत पढ़ा और प्रभावित भी हुए हैं। आशा है आपस में कभी मिलना भी होगा। 'अर्हत् वचन' शोध पत्रिका वास्तव में प्रभावक, ठोस सामग्री लिये उच्च स्तरीय पत्रिका बन गई है। आपका श्रम, समय, शक्ति और सोच की सार्थकता मुझे भी मेरे कर्म में सहयोग देगी, ऐसा मैं सोचती हूँ।

■ **मुमुक्षु डॉ. शान्ता जैन**
सम्पादक - तुलसी प्रज्ञा
जैन विश्व भारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय),
लाडनूँ - **341 306**

''अर्हत् वचन'' के जुलाई 99 के अंक में चयनित - प्रकाशित लेखों में जैन - दर्शन की विभिन्न अवधारणाओं - सिद्धान्तों को वैज्ञानिक आधार देने का जो प्रयास किया गया है, वह वर्तमान वैज्ञानिक युग के सन्दर्भ में सामयिक हैं, सराहनीय है। अर्हत् - वचन जैन दर्शन की वैज्ञानिकता प्रमाणित करने के प्रयास में निरन्तर प्रयत्नशील है जो प्रशंसनीय है। ''जैन भूगोल, वैज्ञानिक सन्दर्भ'' के लेखक श्री लालचन्द जैन ''राकेश'' ने लिखा है कि हमारे तीर्थंकरों / आचार्यों ने आत्मा की प्रयोगशाला में बैठकर जिन तथ्यों को प्रदिपादित किया वे विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरे हैं। तीर्थंकर, अर्हन्त भगवन्तों के सन्दर्भ में उनकी सर्वज्ञता, आत्मा की निर्मलता से चराचर जगत के पदार्थों की पर्यायों को समग्रता से ग्रहण करने की सक्षमता स्वीकार्य हो सकती है, यद्यपि इसमें भी जैन आचार्यों में यत्र - तत्र मतभेद दृष्टिगत् होते हैं। दिगम्बर परम्परा में अंतिम श्रुत केवली भद्रबाहु के पश्चात् द्वादशांग का विस्मरण स्वीकार किया है। गणधर द्वारा गुंथित द्वादशांग ही प्रमाणिक आगम है, जो उपलब्ध नहीं है। शेष सभी आगमोत्तर साहित्य छद्मस्थ गृहस्थों / आचार्यों द्वारा अत्यन्त न्यून स्मृति के आधार पर प्रणीत है। धरसेन आचार्य को अग्रायणी पूर्व के पांचवें वस्तु अधिकार के प्रकृति नामक चौथे प्राभृत का तथा गुणधर आचार्य को ज्ञान प्रवाद पूर्व के दसवें वस्तु अधिकार के तृतीय प्राभृत का ही ज्ञान था। वर्तमान में उपलब्ध जैन साहित्य विशद द्वादशांग की नगण्य स्मृति पर आधारित है। कई आचार्य ब्राह्मण परम्परा से आये और अपने पूर्ववर्ती संस्कारों, काल विशेष में प्रवर्तित परिवेश में तदनुसार साहित्य की रचना करते रहे।

अर्हत् - वचन के अप्रैल 99 के अंक में आचार्य गोपीलाल अमर ने तो अधिकांश आगमोत्तर साहित्य को गृहस्थों द्वारा रचित और भक्तिभाव के कारण आचार्यों को समर्पित करके लेखन का श्रेय उन्हें दिया गया माना है। वर्तमान में जैन समाज में धर्म के नाम पर क्रियाकांडों की भरमार है। जैन दर्शन मूलत: क्रियाकांड विरोधी है। अनेक क्रियाकांड जिनमें असंख्य जीवों की संकल्पी हिंसा निहित है, वैदिक - वैष्णव परम्पराओं के संक्रमण का ही परिणाम है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में यह आवश्यक है कि प्रचलित सिद्धान्तों, अवधारणाओं की प्रयोगात्मक वैज्ञानिक प्रक्रिया से पुष्टि की जावे। अर्हत् - वचन के जुलाई 1999 के अंक में सभी लेखों में जिस प्रकार से वैज्ञानिक आधार तलाशने की जो खींचतान तोड़ - मरोड़ की गयी है, वह तर्क संगत नहीं लगती। जैन भूगोल का ही उदाहरण लें,

सुमेरू पर्वत कहीं दृष्टिगत नहीं है, अन्य सामंजस्य भी पूर्वाग्रह से संशलिष्ट असफल प्रयास ही है। कार्माण वर्गणा का जीन्स से संबंध भी ऐसा ही उद्धरण है। क्लोनिंग और कर्म सिद्धान्त का संदर्भ भी मात्र तर्क से प्रमाणित नहीं किया जा सकता। इसी अंक में नन्दलाल जैन ने अपने लेख में पुद्गल की अजीव के रूप में मान्यता भी कालान्तर में आगमोत्तर बताई है।

अत: मेरा सुझाव है कि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा रसायन, भौतिक, आदि प्रयोगशालाएँ स्थापित कर वैज्ञानिक प्रयोगात्मक आधार पर जैन धर्म की विभिन्न अवधारणाओं को प्रमाणित करने का प्रयास किया जावे। जैन साहित्य में अभक्ष्य आदि विषयों के अनगिनत तत्व छिपे हैं जिन्हें प्रयोगशालाओं के माध्यम से सहज प्रमाणित किया जा सकता है। इसी प्रकार अनेक पर्यावरणीय तत्व भी प्रयोगों से सिद्ध किये जा सकते हैं। अर्हत् - वचन के अप्रैल 97 में कल्प वृक्षों पर प्रकाशित मेरे लेख में जैन दर्शन के पर्यावरणीय तत्वों को वैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर ही प्रमाणित किया है। छद्मस्थ प्रणीत आगमोत्तर साहित्य में जो कुछ भी लिखा है उसे पूर्ण रूपेण वैज्ञानिक मानना पूर्वाग्रह ही है। जैन साहित्य में इतना अधिक जैनेत्तर संक्रमण हो गया है कि जैन दर्शन के मूल तत्व ही कहीं जैसे खो गये हैं। बढ़ते क्रियाकांडों में तो जैन समाज की अनुकरणीय, प्रतिष्ठित आदर्श सदाचार की अस्मिता ही धूमिल हो गयी है। वर्तमान युग में यह महती आवश्यकता है कि संक्रमण के विकट जाल से जैन दर्शन के मूल तत्वों को ढूंढ कर प्रतिष्ठित किया जावे।

14.8.99

■ **सूरजमल जैन**
7 - बी, तलबंडी, प्राइवेट सेक्टर,
कोटा

नवीनतम अर्हत् वचन पत्रिका मिली। बहुत परिश्रम किया है। मुखपृष्ठ पर छपे चित्र के नीचे छपा है 'केन्द्रीय म्यूजियम (कम्बोडिया) में पार्श्वनाथ की प्रतिमा'। इस पर मेरा विचार निम्न है -

शरीर विन्यास से यह तीर्थंकर मूर्ति नहीं लगती। हाथ पद्मासन की जैन निरूपित अवस्था में नहीं है, ध्यान से देखें। दोनों पंजों की अंगुलियाँ ही अग्रभाग को स्पर्श कर रही हैं, जिसके कारण भुजाएँ विशिष्ट प्रकार से फैल गई हैं। यह जैन परम्परा के अनुरूप नहीं है। हथेली पर हथेली होने की स्थिति में तीर्थंकर मूर्ति की भुजाएँ बगल के निकट आ जाती हैं।

ध्यान से ग्रीवा एवं मुख को देखें, तो वह भी विशेष प्रकार के लगते हैं। ऐसी तीर्थंकर मूर्तियाँ मैने नहीं देखी हैं। सिर पर जो टोप धारण किया है वह बौद्ध मूर्तियों में मिलता है। **यह मूर्ति किसी बुद्ध अवतार की लगती है।**

सर्प फणावली द्योतक नहीं है कि यह पार्श्वनाथ की मूर्ति ही है। अन्य परम्पराओं में भी सर्प को महत्त्व दिया जाता है। मैंने कहीं पढ़ा था कि बौद्धों में भी नाग पूजक या नाग वंश हुआ है जो सर्प को महत्व देते हैं। मेरे विचार में यह मूर्ति जैन तीर्थंकर की नहीं है।

हमको पूर्ण साक्ष्य के अभाव में एकदम निष्कर्ष पर नहीं पहुँचना चाहिये। यह पुरातात्विक दोष होगा, जिसे जानकार विद्वान स्वीकृत नहीं करेंगे। ऐसी अवधारणाओं से प्रामाणिकता को

दोष लगता है और इसके फलस्वरूप उस समाज को भी अप्रमाणिक होने का दोष लगता है।

मैं जैन धर्म और पुरातत्व का स्वयं पाठक हूँ, अनन्य प्रेमी हूँ किन्तु अन्धभक्त नहीं। मेरी कामना है कि जैन धर्म का परिचय सभी देशों से मिले किन्तु प्रामाणिकता के आधार पर, उसी से सत्य इतिहास की परम्परा बनी रहती है। आप स्वयं विद्वान हैं, आशा है आप शोध - खोज की दृष्टि से इसको देखेंगे।

डॉ. जिनेश्वर दास पुरातत्वविज्ञ नहीं है, इंजीनियर हैं। इस तथ्य को भी दृष्टि में रखें। डॉ. गोकुलप्रसाद जैन ने भी अपनी पुस्तक **'विदेशों में जैन धर्म'** में प्रमाण को आधार नहीं बनाया है। वह भी इतिहासकार नहीं हैं।

हमको ऐसी असावधानियों से परामुख नहीं होना चाहिये। जैन धर्म सत्य और प्रामाणिकता के लिये विश्वप्रसिद्ध है। अपने तथा विद्वत्जनों के विचारों से इस मूर्ति के विषय में निश्चित ही अवगत करायें कि तीर्थंकर मूर्ति है या नहीं।

24.8.99 ■ **सतीश कुमार जैन**

सम्पादक - अहिंसा वायस, **नई दिल्ली**

जुलाई 99 अंक प्राप्त हुआ। श्री लालचन्द्र जैन 'राकेश' का 'जैन भूगोल : वैज्ञानिक सन्दर्भ' लेख काफी रोचक लगा, इस सम्बन्ध में मैं अपने कुछ विचार प्रकट करता हूँ।

प्रथम पैरे में लिखा है - 'कुछ विज्ञानान्धजनों का धर्म के प्रति रूझान दिनों दिन कम होता जा रहा है।' मेरे विचार से 'विज्ञान' तो विशेष - ज्ञान को कह सकते हैं। इससे तो अंध विश्वास को दूर करने में सहायता ही मिली है। एक वैज्ञानिक हमेशा सत्य की खोज में लीन रहता है, विभिन्न अथवा परस्पर विरोधी देशों के वैज्ञानिक भी एक दूसरे के सत्यान्वेषण व सिद्धान्तों की प्रशंसा करते देखे जाते हैं, पर एक ही देश के विभिन्न धर्मानुरागी एक दूसरे के कट्टर शत्रु भी देखे जा रहे हैं।

वैज्ञानिक समय - समय पर World Level Conference करके अपने आपस की मान्यताओं पर वादविवाद कर संशोधन करते रहते हैं, पर धार्मिक कट्टरवादी एक दूसरे को प्राय: नीचा ही दिखाते रहते हैं। धार्मिक कट्टरवादी धर्म के आधार पर जातियों का निर्माण कर उन्हें आपस में लड़ने को मजबूर करते हैं पर वैज्ञानिकों की कोई जाति अलग से नहीं होती, जातिगत भेद उनमें नहीं है। हाँ, वैज्ञानिक खोजों का राजनीतिज्ञ लोग दुरुपयोग करते हैं, इसमें वैज्ञानिकों का कोई दोष नहीं। इतिहास बताता है कि आजतक जितनी भी लड़ाइयाँ हुई हैं, वे प्राय: धर्मान्ध या कट्टर जातिवादी लोगों द्वारा ही लड़ी गई हैं।

आज संसार बारूद के ढेर पर बैठा हुआ है, परस्पर विरोधी देशों और राजनीतिज्ञों के पास हजारों अणुबम हैं, वे चाहें तो एक क्षण में संसार को नष्ट कर सकते हैं। पर इसके बावजूद जो शक्ति इनको वश में किये हुए है वह ज्ञान और विवेक की शक्ति ही है अर्थात् वैज्ञानिक विचारधारा ही है जिससे यह सर्वनाश नहीं हो पा रहा है।

प्राचीन काल में जो भी सिद्धियाँ, विद्याएँ किन्हीं विशेष लोगों के पास ही सीमित थीं, वे अपनी विद्याएँ गुप्त ही रखते थे और अपने जीवन के बाद वे उन्हीं के साथ गायब हो गईं पर आज वैज्ञानिक अपनी उपलब्धियों की सत्यता पर पर्दा नहीं डालते, उन्हें पूरा प्रकाशित किया जाता है और दूसरों को भी पूरा - पूरा लाभ मिलता है, संसार आगे

बढ़ता है। यही कारण है कि आज रेल, टेलीफोन, हवाई जहाज, मोटर, कम्प्यूटर, बिजली आदि ऐसे कई आविष्कार जन - जन तक व घर - घर तक पहुँच सके हैं और इनका लाभ वे कट्टर धर्मान्ध व्यक्ति भी उठा रहे हैं, जो विज्ञान और वैज्ञानिकों को प्रायः कोसते रहते हैं। आज एक धार्मिक गुरु की धर्मसभा में जबतक माइक्रोफोन, स्पीकर्स, पंखे, वीडियो, टी.वी., टेपरिकार्डर, केमरे नहीं होते तब तक उन्हें चैन ही नहीं मिलता, क्या ये विज्ञान की देन नहीं है?

आर्किमिडीस, आइन्सटाइन, फेंकलिन, लेवोईजियर, जगदीश बोस, फैराडे, न्यूटन, सुकरात, गैलिलियो आदि वैज्ञानिक उच्च कोटि के दार्शनिक हुए हैं। उनके चित्रों को देखने से वे ऋषि जैसे लगते हैं, इनका जीवन बड़ा सीधा सीधा, मायाचार से रहित रहा है। अनुसंधान करते समय अपने खाने पीने सोने की भी सुध बुध खो देते थे, अपनी प्रयोगशाला के सिवा कोई विशेष परिग्रह इनके पास नहीं होता था, आईन्सटीन तो कपड़े धोने, नहाने और हजामत बनाने, तीनों के लिये एक ही साबुन का प्रयोग करता था।

आज जब एक वैज्ञानिक अपनी खोज के पश्चात उसमें कोई भी सुधार सत्य के आधार पर करने को तैयार रहता है, वहीं कट्टरपंथी लोग केवल पौराणिक शास्त्र या तथाकथित आगम के सिद्धान्तों में सुधार करने को तैयार नहीं, चाहे वे जैनागम हो, कुरान, वेद, बाइबल, कुछ भी हो। इसका कारण यह है कि खोज में निरन्तरता (Continuity) तो है नहीं, जो कुछ भी पास में है उसमें भी कोई विकास करने की इच्छा नहीं है, तो नई पीढ़ी को उससे लगाव कैसे हो? यही तो कारण है कि कट्टरवादी लोग अब भी पृथ्वी को चपटा मानते हैं, सूर्य को पास में और चन्द्रमा को सूर्य से ऊपर मानते हैं, पृथ्वी को स्थिर मानते हैं, ग्रहण होने का कारण राहू और केतु राक्षसों का डसना मानते हैं।।

अब भी समय है कि धार्मिक बुद्धिजीवी तथा वैज्ञानिक परस्पर बैठकर आपस में तालमेल कर एक दूसरे की विशेषताएँ स्वीकार कर विकास की दिशा में आगे बढ़ें और विश्व को नफरत, आतंकवाद व गरीबी से दूर करने में सहयोग देवें, वरना धर्म तो पीछे रह जायेगा और विज्ञान आगे बढ़ता जायेगा।

28.9.99

■ **हेमन्तकुमार जैन**
729, किसान मार्ग, बरकतनगर,
जयपुर - 302 015

आज मैंने शोध संस्थान की लायब्रेरी का विस्तृत अवलोकन किया। पुस्तकों का संग्रह देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। सभी पुस्तकों का हिन्दी में कम्प्यूटराइज्ड केटलाग भी तैयार किया गया है जो एक अनुपम प्रयोग है, इससे पुस्तकों को आसानी से खोजा जा सकता है। पुस्तकालय में जैन धर्म की आधुनिक एवं नवीनतम रचनाएँ उपलब्ध हैं जो निश्चित ही इसमें रुचि रखने वाले के लिये बहुत उपयोगी होगा। आशा है कि पुस्तकालय में पुस्तकों की निरन्तर वृद्धि होती रहेगी।

■ **डॉ. देवेन्द्र सिंघई**
आयुक्त - पिछड़ा वर्ग कल्याण, म.प्र. शासन,

7.8.99

सम्प्रति : निदेशक - पर्यटन एवं आवास प्रबन्धन संस्थान,
ग्वालियर (म.प्र.)

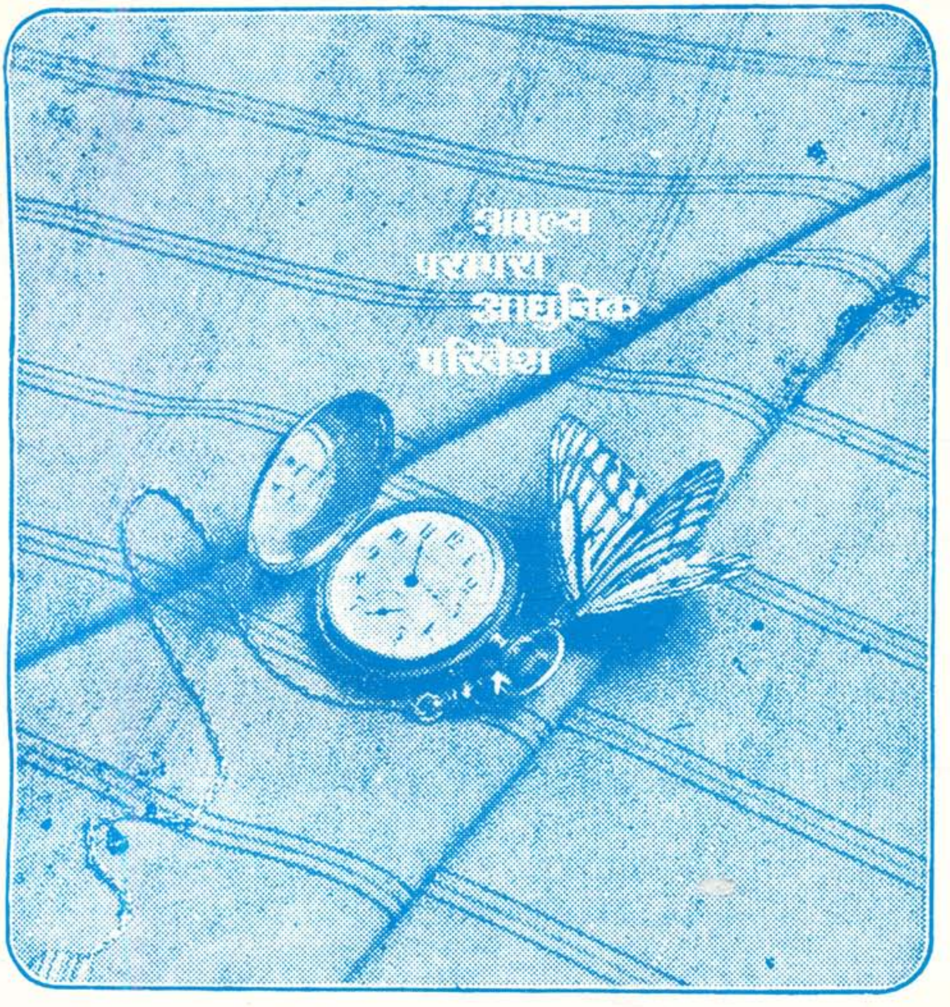

एस.कुमार्स द्वारा दोनों ही अनुपम गुणों का समन्वय

आधुनिक परिवेश में सुसज्जित हमारे वस्त्रों में
उन अमूल्य गुणों का भी समावेश रहता है
जिन्हें समय भी बदल नहीं पाया...
यह अमूल्य निधि अर्थात हमारी परम्परा
प्रतिबिम्बित है हमारे वस्त्रों के कलात्मक डिज़ाइनों,
पोत एवं बुनावट शैलियों के साथ उत्कृष्टता,
टिकाऊपन तथा किफ़ायत जैसे दुर्लभ गुणों के
समन्वय में। इसीलिये जब भी आप
उत्कृष्ट वस्त्र खरीदना चाहेंगे तो एस. कुमार्स वस्त्रों में
एक बात सुनिश्चित पायेंगे कि आपको
प्राप्त होगा लाभ ही लाभ !

एस.कुमार्स®

टेरीन सूटिंग, शर्टिंग, साड़ियां

'निरंजन', ९९, मरीन ड्राइव,
बम्बई ४०० ००२

ऊंची से ऊंची क्वालिटी-नीचे से नीचे दाम

I.S.S.N. 0971-9024

अर्हत् वचन भारत सरकार के समाचार-पत्रों के महापंजीयक से प्राप्त पंजीयन संख्या 50199/88

स्वामित्व श्री दि. जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर की ओर से देवकुमारसिंह कासलीवाल द्वारा 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर से प्रकाशित एवं **सुगन ग्राफिक्स**, सिटी प्लाजा, म.गा. मार्ग, इन्दौर द्वारा मुद्रित।

मानद् सम्पादक - **डॉ. अनुपम जैन**